टिळक महाराष्ट्र विद्‌यापीठ

दूरशिक्षण विद्‌याशाखा

प्रश्नपत्र -

प्राचीन-काव्य

(लेखिका - डॉ. अनुराधा बावीकर)

एम.ए. (हिंदी)

भाग - 2

प्रस्तावना

दूरशिक्षा की व्याप्ति असीम है। इसने उन लोगों के लिए शिक्षा के द्वार खोल दिए हैं, जिन्हें उच्च शिक्षा का मौका नकारा गया। आज जब की ज्ञान का लगातार बढ़ना समय के साथ रहने के लिए अनिवार्य है, दूरशिक्षा तेजी से होते तकनिकी विकास की सहायता से सभी सीमाएँ लाँघ रही हैं। छात्र भले ही दूरी पर हों, हमारे विद्वान प्राध्यापकों द्वारा रचित अध्ययन साहित्य उनको शिक्षा का एक परिपूर्ण अनुभव देगा।

एम. ए. (हिंदी) भाग 2 में आप कुछ आधुनिक कवियों की रचनाओं को पढ़ेंगे। इसके अलावा इस साल आप हिंदी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करेंगे जो विविध काल में रचित सभी प्रकार के हिंदी साहित्य का ब्योरा लेगा। भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा यह विषय आपको हिंदी भाषा के तत्व और घटकों से अवगत कराएगा तथा अनुवाद विज्ञान यह वैकल्पिक विषय आपको भाषा के एक नए पहलू और कार्य से परिचित कराएगा।

यह अध्ययन और अध्ययन साहित्य परीक्षा में आपकी मदद करने के साथ-साथ आपमें हिंदी का आधुनिक काव्य तथा हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रति रूचि निर्माण करे, आपको हिंदी भाषा के विविध तत्त्वों, घटकों तथा पहलूओं के प्रति सजग बनाए इस आशा के साथ हम यह अध्ययन साहित्य आपको सौंप रहे हैं।

प्रा. नीलिमा मेहता
विभागप्रमुख, दूरशिक्षण विद्याशाखा

दो शब्द

हिंदी के उच्चतम कक्षा में उपयुक्त 'प्राचीनकाव्य' के विषय में यह पुस्तक छात्रों के हाथों में सौंपते हुए मुझे बेहद खुशी हो रही है। एम. ए. कक्षाओं को, प्राचीन काव्य पढ़ाने के कारण मुझे छात्रों की कठिनाईयाँ अच्छी तरह से पता है। लिहाजा छात्रों के बौद्धिक स्तर का ध्यान रखते हुए इस पुस्तक में मैंने परिक्षोपयोगी सामग्री देने का प्रयास किया है। प्राचीन काव्य में निहित अर्थ, उद्देश्य एवं काव्य को सखोल रूप से जानने के लिए छात्रों को चाहिए कि टि. म. वि. के संपर्क सत्र में उपस्थित रहे। एक तो श्रवण से विषय की विस्तृत जानकारी तो होती ही है, और दूसरा अपनी शंकाओं का शमन भी होता है। जायसी की काव्य-कला, तुलसी दास जी की भक्ति भावना, कबीर का विद्रोह, मीरा की समर्पण भावना बिहारी का चातुर्य, घनानंद की प्रेम की पीर जानने के लिए छात्रों को वाचन करना अति आवश्यक है। प्राचीन काव्य की भाषा आत्मसात करने हेतु, वाचन के साथ लेखन भी अति आवश्यक है। हमारे देश के इन महानतम कवियों ने आप सभी के लिए प्राचीन काव्य के रूप में एक अमूल्य धरोहर आपके हाथों में सौंपी है, इसकी रक्षा एवं प्रचार प्रसार करना छात्र-वृत्ति का अहम् कार्य है, मुझे पूरा यकीन है आप अपना यह कार्य सही रूप में पूरा करेंगे। इसी कामना के साथ समस्त छात्रों को अपनी ओर से शुभेच्छा देती हूँ।

डॉ. अनुराधा बावीकर

अनुक्रम

क्र.	पाठ	
	प्रस्तावना	6
1.	**मलिक मुहम्मद जायसी**	10
	प्रेमभाव	10
	सौंदर्य-वर्णन	12
	वियोग-वर्णन	13
	रहस्यभावना एवं दर्शन	16
	प्रकृति चित्रण	18
	नारी चित्रण	20
	लोकतत्व	21
	जायसी की काव्यकला	21
2.	कबीर	23
	कबीर की रहस्यानुभूति और प्रेम	23
	कबीर की भाषा	25
	कबीर की दार्शनिक विचारधारा	26
	हिंदी साहित्य में कबीर का स्थान	28
	कबीर काव्य की प्रासंगिकता	29
	कबीर के निर्गुण - राम का स्वरूप	30
3.	गोस्वामी तुलसीदास	32
	विनयपत्रिका का हेतु	32
	विनय पत्रिका की विशेषता	33
	भक्ति पद्धति	34
	रस योजना और भावात्मकता	36
	भाषा, कवित्व एवं गीतात्मकता	37
	भक्तिकाव्य में विनयपत्रिका का स्थान	39

	कबीर और तुलसी के राम	40
4.	मीरा	42
	मीरा की मधुरा भक्ति	42
	मीरा की प्रेम साधना	42
	मीरा की वेदनानुभूति	42
	मीरा की रस योजना	43
5.	बिहारी	44
	रीतिसिद्ध कवि बिहारी	44
	सौंदर्य चित्रण	46
	बिहारी का संयोग-वियोग शृंगार निरुपण	46
	बिहारी की नीति एवं भक्ति	48
	काव्य सौंदर्य	49
	भाषाशैली	51
	बिहारी की अलंकार योजना	53
6.	घनानंद	54
	घनानंद की प्रेमानुभूति	54
	घनानंद की विरहानुभूति	54
	घनानंद की भगवत् भक्ति	55
	घनानंद की काव्य विशेषताएँ	
	प्रश्नमंजुषा	56

प्राचीन-काव्य

प्रस्तावना -

आचार्य हजारी प्रसाद द्‌विवेदी के अनुसार, "समुचे भारतीय इतिहास में अपने ढंग का अकेला साहित्य है, इसी का नाम भक्ति साहित्य है। यह एक नई दुनिया है." असल में भक्ति युग का आंदोलन एक ऐसा आंदोनल है, जो बाकी आंदोलनों से कही अधिक व्यापक और विशाल है। भारतीय जनता आज भी भक्ति साहित्य के श्रवण-श्रावण से आशावादी होकर अपने जीवन के सभी विषाद, नैराश्य और कुंठाएँ से मुक्ती पाने की राह खोज लेती है। द्‌विवेदी जी के अनुसार "भक्ति साहित्य मनुष्य जीवन के एक निश्चित लक्ष्य और आदर्श को लेकर चला। यह लक्ष्य है, भगवद्‌भक्ति, आदर्श, शुद्‌ध सात्विक जीवन और साधन है भगवान के निर्मल चरित्र और सरस लीलाओं का गान है। ऐसे भक्ति काव्य की कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ देख ले -

1. गुरु महिमा - भक्ति साहित्य में गुरु की महिमा अनंत है। कबीर ने गुरु को गोविंद से बडा माना है, जायसी ने भी कहा है कि, "बिनु-गुरु-जगत को निरगुन पावा। तुलसी दास जी कहते हैं कि "जहाँ बंदौ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु रुप हरि"। उसी तरह कृष्ण भक्त सूरदास जी कहते हैं कि "श्री वल्लभ - नरव चंद्र छटा बिनु सब जगमाहि अंधेरे इस तरह सभी संत-महात्मा गुरु की महत्ता को स्विकार करते हैं।

2. भक्ति की प्रधानता - भक्ति साहित्य में भक्ति पर समान बल दिया गया है। साधक निर्गुण पंथ का हो या सगुण पंथ का दोनों के मार्ग भिन्न होते हुए भी ईश्वर के प्रति भक्ति को समान रूप से महत्व दिया है। जायसी ने शरीकत, तरीकत, हकीकत और मारिफत इन चारों साधनों को भगवद्‌भक्ति के लिए आवश्यक माना है। राम एवं कृष्ण साहित्य में वैधी तथा प्रेमा भक्ति का विशद चित्रण किया है। कबीर 'हरि भक्ति जाने बिना बुड़िमुआ संसार'। कहकर भक्ति महत्व प्रतिपादित किया है।

3. अहंकार का त्याग - भक्ति मार्ग में सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इस मार्ग में अहंकार का पूर्ण रूप से त्याग करना पडता है। संत कबीर कहते हैं, -

"पिया चाहे प्रेम रस राखा चाहे मान।
इक म्यान में दुइ खड्‌ग देखी सुनी न कान।।

तुलसी दास जी तो सेवक के भाव को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, और कहते हैं - सेव्य - सेवक भाव विनु भवतरिय उरगारि।" तो सूरदास जी मित्रता में भी आत्मसर्मपण के भाव को कायम रखते हुए कहते हैं कि, "प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ।"

4. लोकभाषाओं की प्रधानता - भक्तिकाव्य की सबसे बडी विशेषता यही है कि सभी कवियों ने लोकभाषा को अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया। तुलसीदास जी संस्कृत के प्रगाढ़ पंडित होते हुए भी उन्होंने अपने काव्य का सृजन अवधी एवं ब्रज भाषा में किया। कबीर ने सधुक्कडी भाषा से आम आदमी तक अपना संदेश पहुंचाया। जायसी ने प्रेम काव्यों में लोकाभिमुख अवधी भाषा द्‌वारा सृजन किया। सभी संतों ने अपनी अपनी अनुभूतियों को जनमानस तक पहुँचाने के लिए लोकप्रचलित भाषा शैली, दृष्टान्तों, रूपकों, प्रतीकों का अपने काव्य के माध्यम से प्रचार-प्रसार किया।

5. जाति-पाति के भेद-भाव का विरोध - सभी संतों ने जाति के भेद भाव को लेकर अपना विरोध दर्शाया है। इनकी दृष्टि में सभी मनुष्य को समान अधिकार प्राप्त है -

जाति पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई।।

भक्ति काल में सभी संतों में मनुष्यता का महत्व प्रतिपादित किया -

अरे इन दाउन राह न पाई

हिंदुअन की हिंदुआई देखी, तुरकन की तुरकाई

6. रुढियों और आडम्बरों का विरोध - समाज में पनप रही रुढ़ियों और आडम्बरों का जमकर विरोध सभी संतों ने किया। जनजागृती के महत्व को समझकर अपनी वाणी और काव्य के माध्यम से गलत धारणाओं पर प्रहार किया। जैसे

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।

जे जन बकरी खात है, तिन को कौन हवाल।

7. भाषा एवं शैली - भक्ति साहित्य में गेय मुक्तक शैली का प्रयोग किया है। गीति काव्य के सभी तत्त्व- भावात्मकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता, वैयक्तिकता और भाषा की कोमलता इनकी वाणी में मिलती है। उसी तरह इनकी भाषा में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है जैसे, शून्य, अनहद, निर्गुण, सगुण, अवधूत आदि। संत काव्य सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, तथा साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बन पडा है। इस तरह भक्तिकाल की काव्य प्रवृत्तियाँ है। अब हम संक्षेप में रीतिकाल की काव्य प्रवृत्तियों को जानेंगे -

गीतिकाल के साहित्य का परिचय

रीतिकाल साहित्य का निर्माण सामन्तीय वातावरण में फला- फूला। रीतिकाल की सबसे बड़ी विशेषता यही रही की कवि की कल्पनाएँ, उनकी कलम, समस्त अन्तश्चेतना, शराब, सुंदरी और सुराही के ही इर्द-गिर्द रही। अंदर की सौंदर्य की अपेक्षा बाह्य सुंदरता पर ही जोर रहा। रीतिकाल के समस्त कवियों में अपनी कला को नारी सौंदर्य के चित्रण में ही प्रदर्शित किया।

1. शृंगार का प्राधान्य - रति को या प्रेम भाव को प्रधान मानव शृंगार को रसराज के रूप में प्रतिष्ठित किया। शृंगार-काव्य रीति काव्य धारा का प्रमुख प्रतिपाद्य रहा। शृंगार की अभिव्यक्तिमें कवियों ने सभी हदों को पार कर लिया था। साधारण शृंगार को दो मोटे तौर पर विभाजित किया गया संयोग-शृंगार और वियोग-शृंगार। दर्शन, श्रवण, स्पर्श और मिलाप को संयोग शृंगार में प्रस्तुत किया जाता है। जैसे बिहारी की एक रचना देखिए -

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुक..

सौह करे भौहन हंसे दैन कहे नटि जाय।।

रीतिकालिन कवियों में संयोग के स्पर्श सुख का भी खुलकर अभिव्यक्ति की है जैसे -

स्वेद बढ्यो तन, कंप उरोर्जान,

आंखिन आंसू, कपोलनि हाँसी।।

शृंगार का दूसरा पक्ष है वियोग। वियोग के अंतर्गत पूर्वराग, मान, प्रवास और करूण आते हैं। प्रायः सभी रीति कवियों ने वियोगिनी की दसों दशाओं का मनोरम वर्णन किया है। इन दस दशाओं में स्मृति, गुणकथन और प्रलाप के द्वारा प्रियतम के हृदय के भावों का भी विश्लेषण किया है। कवि देव का उदाहरण देखिए -

छलिया छबीलो छैल छूवै चलो गयो।

प्रलाप की दशा में प्रिय के मिलन आदि सुख का भी वर्णन मिलता है। इन दशाओं का वर्णन करते समय इन्होंने खंडिता, मानवती आदि नायिकाओं का उपयोग किया है। बिहारी, देव, मतिराम, पद्याकर ने ऐसी नायिकाओं के वियोग शृंगार का वर्णन बहुत ही बारीकी से किया है।

डॉ. भागीरथ मिश्र के शब्दों में, "शृंगारिकता के प्रति उनका दृष्टिकोण मुख्यतः भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतरसोपानों की ओर वे नहीं जा सके। प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या आदि उदात्त पक्ष भी उनकी

दृष्टि में बहुत कम आए हैं। उनका विलासोन्मुख जीवन और दर्शन सामान्यतः प्रेम या श्रृंगार के बाह्य पक्ष शारीरिक आकर्षक तक ही सीमित रहकर रूप को मादक बनाने वाले उपकरण ही जुटाता रहा। यह प्रवृत्ति नायिका भेद, नख-शिख वर्णन, अलंकार-निरुपण सभी जगह देखी जा सकती है।" असल में इन सौंदर्योपासक प्रेम कवियों का शृंगार वर्णन काफी स्वच्छ और मनोरम है।

2. अलंकारिकता - रीतिकालीन काव्य की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति आलंकारिकता। उक्ति चमत्कार का प्रयोग करके इस काल के कवियों ने श्रोता और पाठक के मन को आकर्षित करने का एक सफल उद्देश्य को पूरा किया। एक तो उस समय का विलासी राजदरबारी वातावरण था, दूसरा जन-सामान्य की मनोवृत्ति भी कुछ इस प्रकार की बनी हुई थी। इस आकर्षकता का एक अन्य कारण यह भी था कि अलंकार शास्त्र के अनुसार अपनी कविता-कामिनी को सांचों में ढालना। अलंकार शास्त्र से विरहित काव्य को, और काव्य-रचेता को उस समय सम्मान मिलना मुश्किल था। यही कारण था इस युग में अलंकारिकता खूब फली-फूली और इसके अतिरिक्त ने काव्य के आंतरिक पक्ष को निर्बल बनाया।

3. भक्ति और नीति - राधा और कृष्ण के माध्यम से रीति काल में भक्ति की नई परिभाषा आंकी गई। रीतिकालीन कवि का मुख्य प्रयोजन था किसी न किसी आश्रयदाता को रसिकता से रिझाना। अगर ये आश्रयदाता उनके काव्य से रिझ जाते तो वह कवि अपने आप ही बहुत बडा साहित्यकार समझा था। इसलिए रीतिकाल में राधाकृष्ण की भक्ति में भक्ति शृंगार को ही महत्व दिया गया। जैसे -

श्री राधा पदपदम को, प्रनमि प्रनमि कवि ग्वाल
छमवत है अपराध को, कियो जुकथन रसाल

नीति और भक्ति से संबंधित उक्तियां शतक ग्रंथों उपलब्ध हैं। रीतिकाल की इन उक्तियों का मूल स्रोत ग्रंथ हैं। रीति काल में रचित भक्ति काव्य में किसी उदात्त की कल्पना नहीं की गई थी। फिर भी रीतिकाल में उपलब्ध भक्तिकाव्य परिमाण और साहित्यक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

रीतिकाव्य में अधिकांशतः कवित्त, सवैया और दोहा जैसे छंदों का प्रयोग किया गया है। रीतिकालीन कवियों ने अपने आश्रयदाता को खुश करने के लिए काव्य में तो चमत्कार का प्रदर्शन किया है और इसके लिए शब्दार्थ, यमक, अनुप्रास आदि का उपयोग उन्होंने खूब किया है। रीतिकाल में सर्वथा शृंगार रस को ही सबसे अधिक दिए जाने के कारण छंद और अलंकारों को भी अधिक मान दिया गया।

4. सूफी काव्य तथा प्रेमाख्यानक काव्य - रीति काल में दो प्रकार के प्रेम काव्यों की रचना हुई। कुछ काव्य आध्यात्मिक प्रेम सिद्धांत निरुपक है तो कुछ लौकिक प्रेम परक। मुसलमान सूफी कवियों में कासिम शाह, जूर मुहम्मद जैसे उल्लेखनीय हैं तो लौकिक प्रेम काव्यों के लेखकों में बोधा, चतुर्भजदास, आलम आदि विशेष उल्लेकनीय है।

5. आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण - रीति काव्य में प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप में चित्रित किया गया है। प्रकृति का चित्रण नायक और नायिका की मानसिक दशा के अनुकूल ही किया गया है। संयोग में उसका मनोमुग्धकारी और वियोग में विदग्धकारी रूप में हुआ है। प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रा षटऋतु और बारहमासे का चित्रण-पद्धति पर हुआ है।

6. अभिव्यंजना की पद्धति - रीतिकाल में कवियों ने तीन प्रकार शब्दों का प्रयोग किया है - लक्षणात्मक अनुकरणात्मक और रणनात्मक। बिहारी, देव, दास तथा पद्माकर आदि ने इन शब्दों का प्रयोग किया है - जैसे - झांझरिया झनकेंगी खरी रणत भृंग घटावली' 'फहर फहर होत पीतम को पीत पट' इन शब्दों से उपस्थित किया गया ऐंद्रिय वातावरण उस काल के उपभोगात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है।

7. नारी-चित्रण - रीतिकाल पर शृंगार रस का आधिपत्य था। इसलिए सभी कवियों ने नारी के कुच-कटाक्ष के महीन से महीन विलासात्मक चित्रण किए हैं। ऐसे कवियों के दृष्टि में ना सिर्फ भोगविलास का साधनमात्र थी। उन्होंने नारी के देह को देखा और उसी को अपने काव्य में ढाला।

सीतिबद्ध कवियों ने नारी के सामाजिक योगदान की दृष्टि से कुछ भी नहीं लिखा। उसे तो केवल पुरूष को आकर्षण का केंद्र भर मान कर ही चित्रित करने का प्रयोस किया।

कुल मिलाकर रीतिकाल में रीति कवि में रुढिबद्धता, अवैयक्तिकता और यांत्रिकता दिखाई देती है। इस तरह हमने अब तक भक्तिकाल एवं रीतिकाल काव्यप्रवृत्ति के बारे में जाना। अब हम पाठ्यक्रम में निर्धारित कवियों के बारे में जानेंगे।...

अध्याय - 1 मलिक मुहम्मद जायसी

पाठ्यक्रम में निर्धारित कवियों में से सबसे पहले जायसी कवि है। **जायसी का परिचय -** सूफी कवियों में सर्वश्रेष्ठ जायसी कवि माने जाते हैं। उनके जन्म संवत के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जाता। जायसी के द्वारा रचित आखिरी कलाम में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है -

भौ अवतार मोर नौ सदी।
तीन बरस ऊपर कवि वदी।।

याने के नवीं सदी हिजरी में जन्मे थे और तीन वर्ष की अवस्था में उन्होंने आखिरी कलाम का प्रणयन आरंभ किया था। जायसी के आखिरी कलाम की रचना व 36 हि. में से 30 वर्ष निकाल देने पर 906 हि. सन् आता है जो कि इनका जन्म संवत स्वीकार किया जा सकता है। बंगाल के कवि अलाबल ने पद्मावत का जो अनुवाद बंगला में किया है उसमें उसने इसका रचना काल 927 हि. बताया है। अतः यह कहा जा सकता है कि, जायसी का जन्म 906 ई. में अर्थात् सन 1448 में हुआ। इनकी मृत्यु सन् 1542 में बताई जाती है। 911 हि. में एक बडा भूकंप आया था और 912 में सूर्य ग्रहण भी हुआ था। जायसी ने अपनी रचनाओं में इन दोनों बातों का उल्लेख किया है।

रचनाएँ - जायसी की तीन रचनाएँ प्रकाशित हुई है -

1. आखिरी कलाम - 927-936 हि.
2. पद्मावत - 927-947 हि.
3. अखरावट - पद्मावत के बाद की यह रचना है।

आखिरी कलाम और अखरावट को सांप्रदायिक दृष्टि से महत्व है। आखिरी कलाम में सृष्टि के अंत तथा मुहम्मद साहब के महत्व का वर्णन है। इसमें सृष्टि के अंत में क्या अवस्था होती है, तथा उस समय जिब्राइल आदि फरिश्ते क्या करते हैं, इसका वर्णन किया है।

अखरावट में ईश्वर, जीव, ब्रम्ह, सृष्टि-निर्माण, गुरु तथा धर्माचार आदि की सैद्धांतिक विवेचना की गई है।

जायसी को, प्रेम पीर के प्रचारक माना जाता है। उनकी रचित 'पद्मावत' एक अलौकिक हिंदी साहित्य का अनमोल रत्न है। इस प्रेमाख्यान में रत्नसेन और पद्मावती की लौकीक प्रेम कहानी के द्वारा अलौकीक प्रेम की अभिव्यंजना की गई है ! जहां दूसरे कवियों ने अपने काव्य में काल्पनिक कहानिया अपनाई वहाँ जायसी ने पद्मावत में लोकप्रचलित कथा में ऐतिहासिकता सुंदर समन्वय करते नए रूप में प्रेमाख्यान को प्रस्तुत किया

पद्मावत में प्रेमभाव

प्रेमभाव - जायसी की प्रेम-कथा पूर्ण रूप से सूफी पद्धति पर आधारित है। इसलिए पद्मावत में राजा रत्नसेन और पद्मावती के लौकिक प्रेम द्वारा, आध्यात्मिक प्रेम का प्रतिपादन किया गया है। पद्मावत में कवि ने नायिका पद्मावती के अनुपम एवं अद्वितीय सौंदर्य की ऐसी प्रशंसा की है, जिसे सुनकर राजा रत्नसेन के ह्रदय में प्रेम भाव जागृत हुआ। प्रेम-साधना द्वारा ईश्वर की अनुभूति करना पद्मावत के अनुसार जायसी का लक्ष्य प्रतीत होता है। ईश्वर की अनुभूति को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करना संभव नहीं है, इसलिए जायसी ने उस वर्णनातीत अनुभव की व्यंजना के लिए लौकिक, कथा को आधार बनाया है तथा अपनी अंतर्मुखी प्रेम साधना की अभिव्यक्ति की है।

हीरामन तोता के मुख से पद्मावती के रूप की प्रशंसा सुनकर राजा रत्नसेन चित्तोड़ छोडकर तथा योगी बनकर सिंहलद्वीप की यात्रा पर निकल पडता है। रत्नसेन अपने राज्य-वैभव और परिणिता पत्नी को छोडकर सोलह सत्रह कुमारों के साथ जोगी वेश में कलिंग के सिंहल की ओर प्रस्थान करता है।

प्रेम में वासना विष होता है। तप द्वारा इस विष को जलाकर प्रेम को विशुद्ध करने की आवश्यकता होती है। पद्मावती मंदिर में जाती है तो रत्नसेन सोता रह जाता है। यह जीव की सुषुप्तावस्था का सांकेतिक चित्र है। पद्मावती हीरामन से रत्नसेन की विरह-व्यथा सुनती है -

कहे सि सुआ मों सो सुन बाता। चाहौं तो आजु मिलौं जस राता।।
पै सो मरमु न जानै मोरा। जानै प्रीति जो मर कर जोय।।
हौं जानति, हौं आबहूँ काँचा। न जनहुँ प्रति रंग चिर राँचा।।
न जनहूँ भयस मलैगिरि बासा। न जनहुँ रवि होइ चढ़ा अकासा।।

वासना के परिष्कार के हेतु ही पद्मावती ने मिलन सिद्धी के लिए रत्नसेन के वक्षस्थल पर संकेत दिया -

सूफी प्रेम-पद्धति पर आधारित पद्मावत होने के कारण ही जायसी ने प्रथम तो इसमें पद्मावती को रूप-सौंदर्य को अनुपम एवं अद्वितीय सिद्ध किया है। इसलिए ही कवि ने 'जेहि दिन दसन जोति निरमई, बहुतन्ह जोति-जोति ओहि भई' कहकर कवि ने पद्मावत को अनुपम ज्योति स्वरूप प्रस्तुत किया है। 'रवि ससि नकवत दिपहिं ओहि जोती' कहकर उसी की ज्योति से सूर्य-चंद्र आदि को प्रकाश ग्रहण करते हुए बताया है, "सखर रूप विमोहा हिए हिलोरहि लेई' कहकर मानसरोवर को भी अद्भुत रूप-सौंदर्य पर विमुग्ध होता हुआ दिखलाया है तथा 'नयन जो देखा कमल भा' आदि कहकर पद्मावती के ही नेत्रों से सरोवर में कमलों की सृष्टि होते हुए, उसके निर्मल शरीर से सरोवर में निर्मल जल की सृष्टि होते हुए, उसके उज्ज्वल हास से सरोवर में हंसों की सृष्टि होते हुए तथा उसके दांतों की ज्योति से सरोवर में नग और हीरों की सृष्टि होते हुए दिखाया है। ऐसे अद्भुत सौंदर्य से ओतप्रोत पद्मावती यहाँ 'हक' की प्रतीक है। वैसे भी प्रेम-पद्धति के आधार पर ईश्वर को नारी के रूप में ही देखा जाता है।

रत्नसेन चित्तौड़ छोड़कर तथा योगी बनकर सिंहलद्वीप यात्रा पर निकल पड़ता है तो मार्ग में समुद्र-यात्रा के समय अनेक विघ्न आते हैं, किंतु उन्हें पार करता हुआ सिंहलद्वीप पहुँचता है। वहा पहुँचकर भी उसे राजा गंधर्वसेन के कोप का भाजन बनना पडता है और शूली पर चढ़ने तक की नौबत आ जाती है। लेकिन राजा रत्नसेन सारे कष्टों की चिंता को न घबराते हुए और पद्मावती के अनन्य प्रेम होने के कारण रत्नसेन को पद्मावती की प्राप्ति हो जाती है। लौटते समय भी रत्नसेन के मार्ग में बाधाएँ आती है। और समुद्र में वे दोनों प्रेमी बिछुड जाते हैं, लेकिन प्रेम की गहनता एवं दृढ़ता के कारण उनका पुनर्मिलन होता है और वे सकुशल चित्तौड़ लौट आते हैं। संसार में रहते हुए उन्हें फिर से बाधाएँ घेर लेती है। राघव चेतना की दृष्ट प्रवृत्ती के कारण अलाउद्दीन बादशाह पद्मावती को पाने के लिए चित्तौड़ पर चढ़ाई करता है तथा राजा रत्नसेन को बंदी बनाकर दिल्ली ले जाता है, किंतु गोरा बादल के प्रयास से राजा कारागार से मुक्त हो कर फिर चित्तौड़ लौट आता है, फिर भी वे सकुशल नहीं रह पाते राजा वीरपाल की दृष्टता के कारण रत्नसेन उससे युद्ध करता है और इस युद्ध में राजा रत्नसेन को वीरगति को प्राप्त होता है। अंत में राजा रत्नसेन के साथ उसकी दोनों रानियाँ- पद्मावती और नागमती सती हो जाती है। इस तरह जायसी ने राजा, रत्नसेन के रूपी आत्मा को 'फना' करके 'अनलहक' की अधिकारिणी होती हुई 'आलमें लाहुत याने माधुर्य-लोक में जाकर पद्मावती रूप हक् या परमात्मा के साथ एकाकार हो जाती है और उसे 'अनलहक' की सिद्धि हो जाती है। राजा रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम की यह कथा आत्मा और ब्रह्म के मिलन की कथा है। आत्मा अपने अंशी से पृथक होते ही उससे मिलने के लिए व्याकुल हो जाती है। अनेक परीक्षाएँ देने के बाद आत्मा का परमात्मा से मिलन हो जाता है।

पद्मावत पर फारसी प्रेम काव्य का प्रभाव दिखाई देता है। इसके अंतर्गत मसनवी कथाओं और भारतीय प्रेम कथा का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। इसके अलावा सहजयानी सिद्धों की साधना-चर्चा, नाथ पंथियों के योग और मुसलमान संतों की सूफी परंपरा के आधार पर जायसी ने अपने विशिष्ट प्रेम को अध्यात्मिक दृष्टि से पल्लवित किया है। इस मार्ग में तंत्र, कुंडलिनी योग, सहजयान, शिवशक्ति, और अंत में प्रेम-साधना को सर्वोपरि स्थान दिया है।

पद्मावत में सूफी-पद्धति को अपनाया गया है इसलिए जायसी ने पहले तो इसमें पद्मावती के रूप सौंदर्य का अद्वितीय वर्णन किया है। फारसी पद्धति के आधार पर ईश्वर को नारी के रूप में ही देखा जाता है। फारसी प्रेम पद्धति के कारण ही जायसी पद्मावत में प्रेम-तत्व का गहनतम वर्णन किया है। ध्रुव तें ऊंचे प्रेम धुव ऊआ' आदि कहकर कवि ने प्रेम को ध्रुव तारे से भी अधिक अटल एवं दृढ सिद्ध किया है। प्रेम के जाग्रत होते ही जीव को तीन लोक एवं चौदह खंड दिखाई देने लगते है और ऐसे में फिर संसार में कोई भी वस्तु सुंदर नहीं दिखाई देती है। कवि ने जीव के प्रेम की गहनता व्यक्त करते हुए उसे समुद्र की विशालता की उपमा दी है। सागर की गहराई एवं उसकी सीमा का पता लगाना जितना मुश्किल है उतना ही जीव के अंदर पल्लवित हुए प्रेम को नापना। यहाँ पर राजा रत्नसेन जीव याने आत्मा का रूप है तो पद्मावती परमात्मा का प्रतीक माना गया है सूफी प्रेम पद्धति के अनुसार। जायसी ने जीव के प्रेम को व्यक्त करते हुए कहा है कि -

प्रेम-समुद्र जो अति अवगाहा। जहां न वार न पार न थाहा।।
जौं वह समुद्र काह एहि परें। जौं अवगाह हंस होइ तिरें।
हां पदुमावत कर भिखमंगा। दिस्टि न आव समुद्र और गंगा अस मनि जानि समुद्र महँ परऊँ। जो कोई खाइ बेगि
निस्तरऊ सरग सीस धर धरती। हिया तो प्रेम समुन्द।।
नैन कौड़िया होइ रहे। लै लै उठहिं सो बुन्द।।

अर्थात् जायसी कहते हैं कि यदि सच्चा प्रेम जागृत हो जाए तो वह समुद्र जैसी कितनी ही बाधाएँ क्यों न आए उन्हें पार करते हुए अपने प्रेम को पा ही लेता है। वह हंस की तरह उनको पार कर ही लेता है। दिव्य-प्रेम के भिखारी को अपने प्रेम के अतिरिक्त न समुद्र महान दिखाई देता है और न गंगाजी ही। वह तो प्रेम के सागर में डूबकर मर जाना अच्छा समझता है। दिव्य-प्रेम के भिखारी को अक्सर अपने प्रेम के अतिरिक्त न समुद्र महान दिखाई देता हौ और न गंगाजी। जीव तो अपने आपको इन सबसे ऊँचा समझता है। वह तो प्रेम के समुद्र में डूबकर मर जाने में ही अपने आपको भाग्यशाली समझता है। आगे तो वह यहाँ तक सोच लेता है कि यदि कोई जलचर उसे खा लेगा तो वह शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाएगा। इसी प्रेम के कारण उसका मस्तक स्वर्ग में धड धरती पर और हृदय प्रेम-सागर में डूबा रहता है तथा उसके नेत्र कौडिल्ला नामक जलपक्षी की तरह प्रेम सागर की बूंद चुनने के लिए लालायित है - सागर सीस घर धरती हिया तो प्रेम समुन्द। नैन कौड़िया होइ रहे, लै लै उठहिं सो बुंद।। इस तरह जायसी ने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम पाने का मार्ग दिखाया है।

सौंदर्य वर्णन

पद्मावत प्रेम और शृंगार का काव्य अतः रूप-सौंदर्य-वर्णन का चित्रण तो बहुत ही स्वाभाविक सूफी प्रेम साधना में मानवीय रूप में ईश्वरीय सौंदर्य के दर्शन करना। सूफी साधक को संपूर्ण विश्व में ब्रह्म का सौंदर्य नजर आता है। पद्मावत में मुख्यतः आठ स्थलों पर सौंदर्य वर्णन का चित्रण मिलता है। पद्मावती इस कथा की मुख्य नायिका अर्थात ईश्वरीय रूप है तो राजा रत्नसेन साधक है। इसलिए पद्मावती का रूप सौंदर्य अनेक स्थलों पर ब्रह्म के अनंत और अदृष्य सौंदर्य की झलक मिलती है। जायसी ने पद्मावती के अनुपम सौंदर्य को 'पारस रूप' कहा है। शिवसहाय पाठक के शब्दों में - "पारस वह रूप है जिसके आभास अर्थात् छाया मात्रा के स्पर्श से निखिल संस्कृति प्रोद्भासित है। उसी की प्रतिभासिक स्पर्श - दीप्ति से यह जगत रूपवान है।"

पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया है जैसे पद्मावती का स्नान करते समय का सौंदर्य वर्णन, हिरामन द्वारा पद्मावती का नख-शिख वर्णन, रत्नसेन और पद्मावती के मिलन का चित्रण, पद्मावती का शृंगार वर्णन, पद्मावती और नागमती विवाद खंड में इनका आत्मप्रशंसात्मक रूप में अपने-अपने सौंदर्य का वर्णन, अल्लाउद्दीन के द्वारा दर्पण में पद्मावती के रूप दर्शन करते समय का चित्रण, हिरामन शुक द्वारा चित्तौड के राजा रत्नसेन से रूप

वर्णन का चित्रण तथा राघल-चेतन द्वारा दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन से वर्णन करते समय का चित्रण। इन सभी स्थलों पर अत्यंत उल्लासित भाव से पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन किया है। इन सभी वर्णनों में जायसी ने अपनी कला का अद्भुत चित्रण किया है। स्त्री रूप सौंदर्य को प्रस्तुत करते समय कवि ने केश, मांग, ललाट और नयन, नासिका, अधर, दांत, कपोल, स्तन, पेट, कटि, नाभि, नितंब, जांघ, पांव आदि का क्रमबद्ध चित्रण किया है। यह चित्रण रूप-वर्णन के माध्यम से 'अलौकिक सौंदर्य' की ओर भी लक्षित करता है। सिर्फ सौंदर्य वर्णन करना ही कवि का लक्ष्य नहीं था, अतः अलौकिक सौंदर्यभिव्यक्ति भी उनका एक उद्देश्य था जैसे :

जेहि दिन दसन जोति निरमई।
बहुते जोति जोति ओहि मई।।
रवि ससिनखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।।
जहँ जहँ विहँसि सुभावहिं हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।।

इस पंक्ति द्वारा कवि जायसी दांतों का वर्णन करते-करते अपने भाव अनन्त जोति की ओर ले जाते हैं।

रूप सौंदर्य को प्रस्तुत करते समय जायसी ने मूर्त उपमानों का अधिक प्रयोग किया है जैसे - मांग के वर्णन में उसे सरस्वती, वीर बहुटी, दामिनी, कंचन रेखा, सूर्य किरण आदि मूर्त उपमान प्रस्तुत किये हैं। कहीं कहीं फारसी उपमान भी है जैसे - गरदन के लिए सुराही आदि जायसी ने पद्मावती के अप्रतिम रूप को 'पारस' की संज्ञा दी है। पारस रूप उसे कहते हैं जिसके आभास अर्थात् छायास्पर्श से निखिल संस्कृति प्रोद्भासित होता है। और यह माना जाता है कि उसी की प्रतिभासित स्पर्श-दीप्ति से यह जगत् रूपवान है। इस जगत् की अदभुत रूप माधुरी का मूलभूत कारण भी पारस-रूप ही है। पद्मावती का सौंदर्य पारस के समान है जो अपने स्पर्श मात्र से जगत् की प्रत्येक वस्तु को सौंदर्य से मंडित कर देता है जैसे :

"कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगी आई।"

जायसी ने पद्मावती के पारस-रूप का वर्णन करने के बहाने वस्तुतः भगवान का वर्णन किया है। इसके लिए उन्होंने अनेक मार्मिक दृश्यों का चित्रण किया है। अलाउद्दीन ने दर्पण के माध्यम से उस पारस रूप को देखा और मूर्छित हो गया। जैसे -

अति विचित्र देखेउँ सो ठाढ़ी। चित कै चित्र लीन्ह जिय काढी पारस कप वाली पद्मावती सरोवर के पास तक चली आई तब सरोवर उन चरणों के स्पर्श करने से निर्मल हो गया 'पावा रूप के दरसे' उस पारस रूपा के दर्शन मात्र से सरोवर रूपवान हो गया। उसकी चंद्रकला को देखकर कुमुद विकस गये आदि।

जायसी ने कही कही उपमानों का सुंदर वर्णन किया है। ये उपमान पद्मावती के रूप सौंदर्य के लिए प्रयुक्त हुए हैं जैसे, कवि ने उसके अधरों को अमृत से भरा हुआ कहा है और अधरों के सौंदर्य को देखकर बिम्बफल भी लज्जित हो जाता है आदि। कवि जायसी ने 'राजा-सुआ-संवाद-खंड में भी पद्मावती के 'पारस-रूप' का चित्रण किया है।

सौंदर्य दृष्टि के अंतर्गत प्रकृति सौंदर्य पर अगर हम दृष्टि डाले तो कवि जायसी ने उसका भी चित्रण बहुत सहज स्वाभाविक किया है। पद्मावत में सिंहलद्वीप, राजमहल का सौंदर्य चित्रण किया है। जैसे :

"भा निरमल तिन्ह पायन परसे। पाना रूप के दरसे।"

इस तरह जायसी ने सौंदर्य वर्णन का मुख्य प्रतीक पारस है।

पद्मावत में वियोग - वर्णन

पद्मावत में मुख्य रूप से प्रेम के उदात्त रूप को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। प्रेम में संयोग पक्ष से भी अधिक वियोग पक्ष संस्मरणीय होता है। और जायसी तो 'प्रेम के पीर' है ही। जायसी ने विरह वर्णन इस तरह वर्णित किया है कि मानो वे स्वयं ही प्रत्येक पीज से गुजर रहे हो। इसलिए पद्मावत एक विरह प्रधान काव्य बना है। पद्मावत में शुक द्वारा पद्मावती के रूप-सौंदर्य का बखान सुनकर राजा रत्नसेन सात समुद्र पार सिंहलद्वीप के लिए प्रस्थान करता है जिस

कारण नागमती के वियोग की पृष्ठभूमि बनती है। सुखमय गृहस्थी जीवन में अचानक रत्नसेन का किसी ओर की तरफ आकृष्ट होना नागमती को असह्य वेदना देता है। वह रानी है यह भूलकर एक आम नारी की तरह विरह वेदना में तडपती है। नागमती का करूण-क्रंदन को सुनकर पक्षी भी व्याकुल हो उठता है और वह राजा रत्नसेन के पास नागमती की वेदना को सादर करता है। संदेश में नागमती कहती है -

पदुमावति सों कहेहु विहंगम। कंक लोभाइ रही कर संगमा
तोहिं चैन सुख मिलै सरीरा। मी कहँ हिये दुंद दुख पूरा।।
हम हूँ बियाही संग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ, जानु पर जीऊ।
मोहि योग सौं काज न बारी। सौंह दिष्टि कै चाहन हारी।।

रानी नागमती की वरह-स्थिति का वर्णन तीन स्थलों पर चित्रित किया है। पहले तो नागमती वियोग खंड में उसे राजा रत्नसेन के वियोग में अत्यंत पीडा में अपने दिन काटती है। दूसरी स्थिति में पक्षी के सम्मुख अपनी विरह-वेदना प्रकट करती है जिसे उपरोक्त उदाहरण द्वारा हमने देखा है। तीसरे पद्मावती - नागमती - विलाप - खंड में रानी पद्मावती के साथ-साथ रानी नागमती को भी राजा रत्नसेन के बंदी होकर दिल्ली जाने पर अत्यंत विरह में व्यथित दिखाया है। संपूर्ण पद्मावत में नागमती की विरह-वेदना सर्वोपरि है, वह भारतीय रमणी अपने पति के विरह में अत्यंत करूणा के साथ अपनी विरह की व्यथा को प्रकट करती है और उसके आँसुओं की धारा में सभी लोग विव्हल हो उठते हैं। इस कारण ही नागमती वियोग-वर्णन को हिंदी साहित्य की अद्वितीय वस्तु कहा गया है, और विरह-विवेदन की दृष्टि से उसे हिंदी साहित्य की अनुपम निधि ठहराया है। जायसी के विरह-वर्णन में रुदन का प्राधान्य प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है। पद्मावत में विशेष रूप से नारी पात्र की तरह पुरूष पात्र भी रुदन करते दिखाई देते हैं। इनका रुदन तो इस हद तक पहुंचता है कि उसमें पर्वत के शिखर डूब जाते हैं, तो समुद्र अपनी मर्यादा तोड देता है और इन्हीं के साथ सारी सृष्टि विरही की आँसुओं में डूब जाती है। जैसे

पदिक पदारथ कर-हुँत खोबा। टूटहिं, रतन तस रोबा।
गगन मेघ जस बरसै भला। पुहुमी पूरि सलिल बहि चला।।
सायर टूट, शिखर गा पाटा। सूझ न बार पार कहुँ घाटा।।

जिस तरह रुदन का प्राधान्य है, उसी तरह ताप, अग्नि भी संपूर्ण विरह पर छायी हुई है। नागमती के विरह का वर्णन करते हुए जायसी ने सृष्टि के अन्य पदार्थों को भी जलता हुआ दिखाया है।

'अस परजरा विरह कर गठा। मेघ साम भए घूम जो उठ
दाढ़ा राहु, केतू गा दाधा। सूरज जरा, चाँद जरि आधा।।
औ सब नखत तराई जरहीं। टूटहिं लूक, धरनि महं परहीं
जरै सो धरती ठावँहि ठाऊँ। यह कि पलास जरै तेहि दाऊँ।

जायसी के अनुसार सृष्टि के सभी पदार्थ याने पशु-पक्ष पेड, सूर्य आकाश-पाताल स्वर्ग और ब्रम्हाण्ड सभी विरह की अग्नि में जल रहे हैं। पात्रों की विरह पीडा का अत्यंत मर्मस्पर्शी चित्रण जायसी ने किया है। राजा रत्नसेन ने जब हीरामन तोते के मुख से पद्मावती के अलौकिक एवं अपरिमित सौंदर्य की प्रशंसा सुनी तब पहले तो वे मूर्च्छित होकर विरह व्यथा में लीन हो जाते हैं।

"विरह-भौंर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीउ हिलोराळेइ
खिनहिं उसाँस बूढ़ि जिउ जाई। खिनहिं उठै निसरै बौराई।।
खिनहिं पीत, खिन होइ मुख सेता। खिनहिंचेत, खिन होईन

जायसी ने विरह-वेदना में प्रकृति को भी शामिल किया है। इसलिए पशु-पक्षी, पेड, पत्ते, पौधे, पुष्प, लता आदि सभी

प्राकृतिक पदार्थ विरही पात्रों के सबसे नजदीक दोस्त बन गए हैं। उनकी विरह वेदना को सुनते हुए वे खुद भी उसी अनुभव को महसूस करने लगते हैं जैसे,

जोहि पंखी के निअर होइ, कहै विरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात।।

अर्थात् नागमती की वेदना सुनकर पक्षी भी उसके विरह की आग से जलने लगते हैं, वृक्ष अपने पत्ते गिराने लगते हैं। इतना ही नहीं एक पक्षी तो केवल दुखी ही नहीं होता बल्कि वह नागमती की वेदना को समझकर राजा रत्नसेन के पास जाता है और उसे तक नागमती की व्यथा पहुंचाता है।

जायसी ने विरह दशा के अंतर्गत विरही लोगों की निरम्बलता का बडा ही विशद रूप प्रस्तुत किया है। एक स्थान पर रानी पद्मावती कहती है कि विरह की हवा ऐसी आई जिससे पेड का पत्ता बेचैन हुआ और पेड से टूटकर जमीन पर गिर पडा। अब यदि पेड ही उसे ठुकरा दे तो बेचारा पत्ता किस पेड का आश्रय लेगा? कहने का भाव यह है कि यदि अपना प्रियतम ही ठुकरा दे तो फिर प्रेमी को कहा शरण मिल पायेगी -

आवा पौन बिछोड कर पात परा बेकरार।
तखिर तजै जो चूरि कै, लागै केहि की डार।।

जायसी ने विरह में व्याकुलता की चरम सीमा पर पहुंचकर उसका शारीरिक परिणाम की हद भी बता दी है। वे कहते हैं कि नागमती विरह में इतनी व्याकुल हो चुकी है कि वह जलकर कोयला हो जाती है उसके शरीर में तोले भर का भी माँस नहीं रहता, रक्त की बूंद शेष नहीं रहती है और विरह में उसका सारा शरीर-गल-गलकर क्षीण हो जाता।

मनुष्य स्वभाव की बारिकियां को प्रस्तुत करते हुए जायसी ने यह भी दिखाया है कि आसपास का वातावरण चाहे जितना उल्हासित हो, अगर हम बैचेन है, व्याकुल है तो फिर कुछ भी नहीं सुझता, जैसे -

अबहूँ निठुर आउ एहि वारा। परब दिवारी होइसंन
या - सरिख झूमक गावे अंग मोरी। हां झुरावँ बिछुरी भोई जोरी

अर्थात् उत्सव में, तीज-त्यौहार, पर्व आदि जब आते हैं, तब उन अवसरों पर विरही जन अत्यंत बेचैन एवं व्यग्र देखे जाते हैं। ऐसे समय में विरह जन अत्यंत असह्‌य वेदना से गुजरते हैं।

जायसी की विरह-वर्णन की सबसे बडी विशेषता यह है कि उनके पात्रों में जिस विरह का निरूपण हुआ है वह अत्यंत सात्विक भाव के तहत हुआ है, उसमें कही भी भोग-विलास की प्रधानता नहीं है। सभी विरही वियोगाग्नि में जलकर इतने पवित्र, इतने विनम्र, इतने शुद्ध एवं सात्विक बन जाते है कि उनके ह्रदय में गर्व एवं अहंकार लेशमात्र भी नहीं रहता। जायसी ने सभी पात्रों में यह सात्विकता प्रस्तुत की है। नागमती की तरह ही राजा रत्नसेन के ह्रदय में भी देख सकते हैं, जो विरह की इस भौतिक कष्टों से भरे मृत्युलोक से परे कुछ क्षणों के लिए अगर लोक पहुँच जाते हैं और सचेत होते हीं कह उठते हैं,

"जब भाचेत उठा वैरागा।
बाउर जनौं सोइ उठि जागा।।
आवत जग बालक जस रोआ। उठा रोइ हा ग्यान खोआ।।
हो तो अहा अमरपुर जहां। इहां मरनपुर आए

जायसी के काव्य पर पूरी तरह से फारसी वर्णन पद्धति का प्रभाव छाया हुआ है। इसलिए संयोग और विरह में भी अति अतिशयता का वर्णन मिलता है, जैसे पात्रों की आँखों से आँसू की जगह रक्त बहना, राजा रत्नसेन की तरह ही नागमती के आँखों से रक्त बहता है और जिससे भूमि पर गिरने पर घुंघची के ढेर लग जाते हैं। उसी तरह नागमती के ह्रदय विरह की शलाकाओं पर कीमे या कबाब की तरह भुनते हुए दिखाया है, जो पूर्ण रूप से फारसी पद्धति के प्रभाव

का द्योतक है।

इस तरह जायसी ने विरह वर्णन में षड एवं बारहमासे के रूप में प्रकृति का सहयोग तो लिया है। साथ में तीज त्यौहार के विरही जनों की मानसिकता को भी उजागर किया है जो निश्चित रूप से कोमलता सरलता एवं गंभीरता को दर्शाती है। साथ ही चिंता, व्यथा, गुण-कथन, मूर्च्छा, व्याधि आदि दस काम दशाओं को भी प्रस्तुत किया है। विरह-वर्णन में जायसी ने प्रायः अतिशयोक्ति एवं अत्युक्ति का सहारा लेकर विरह-व्यथा को खूब बढ़ाकर लिखा है। फिर भी उसमें संवेदनशीलता एवं प्रभावोत्पादकता अधिक मात्रा में प्रचुर है। उनके हर शब्द से हृदय में ढीस पहुंचती है तो, विरह की तडप को भी अनुभव कराती है। अतः जायसी के विरह-वर्णन में जड-चेतन सभी को प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता प्रस्तुत हुई है।

रहस्य भावना एवं दर्शन

साधना के मार्ग में रहस्यवाद आध्यात्मिक अनुभूति की वह अवस्था है जिसमें भक्त अपने आराध्य के अपरोक्ष साक्षात्कार का चरम प्रयत्न करता है। जायसी एक उच्चकोटी के रहस्यवादी कवि थे। इनके काव्य में सूफीयों के माधुये-भाव का प्राधान्य है। सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में प्रेमिका को भगवान का प्रतीक माना जाता है। इसलिए जायसी पद्मावती को परमात्मा के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं। जायसी का रहस्यवाद अद्वैत भावनापर आश्रित है।

जब जायसी ने अद्वैतावाद का सहारा लेकर अपनी कल्पना द्वारा भावक्षेत्र में पदार्पण किया तब उनकी अभिव्यक्ति में निश्चित रूप से भावात्मक ऊँचाई प्रस्थापित हुई है। जैसे :

'रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोति'

कहकर उस अव्यक्त एवं अगोचर सत्ता की ओर संकेत किया है।

जायसी ने प्रायः प्रकृति के माध्यम से परोक्ष सत्ता की ओर संकेत किया है जैसे - सिंहलद्वीप की अमराई की अनिर्वचनीय छाया का आध्यात्मिक संकेत दिया है जैसे -

घन अमराउ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुत लागि अकासा
तरिवर सबै मलय गिरिलाई। भइ जग छाँह रैनि होई आई
मलय समीर सोहावन छाहाँ। जेठ जाड़ लागै तेहि माहां
ओही छाँह रैन होई आवै। हरिहर सबै अकास देखावै।
पथिक जो पहुँचै सहिकै घामू। दुक बिसरै सुख होइ विसरामू।
जेइ वह पाई छांह अनूपा। फिरि नहिं आई सहै यह धूपा।।

जायसी ने प्रकृति का चित्रण साधक के रूप में किया है। मानव की भाँति समस्त प्रकृति भी उसी परमप्रिय की साधना में निरत रहती है। जैसे मानसरोवर भी प्रियतम की साधना में मग्न है। पद्मावती विराट ब्रम्ह-स्वरूप है सरोवर भक्त या साधक है। भक्त भगवान के इस अलौकिक रूप को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है -

'सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोरहि लेइ।
पावं छुलै मकु पावौ, एहि मिस लहरहिं देइ।।

साधक सरोवर प्रियतम के रूप में अपने आराध्य को पाकर आनंदित हो उठता है अतः उसकी युग-युग की साधना-जन्य परितप्तता शीतलती में हित होती है।

'कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहां लगि आई।।
भा निरमल तिन्ह पायन परसे। भावा रूप रूप के दरसे।।
मय-समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुसाई

जायसी ने प्रकृति के संशिष्ट चित्रण में भी रहस्यपूर्ण संकेत दिये हैं। जैसे -

धरती लेइ सरग लहिं बाढा। सकल समुद्र जानहु आ नढा।।

किलकिलाता हुआ समुद्र के आध्यात्मिक पक्ष को उजागर किया है।

साधनात्मक रहस्यवाद को जायसी की एक बहुत बड़ी देन है। वह इस अर्थ में है कि ऐसे शुल्क और योगमूलक साधनात्मक रहस्य भावना को अत्यंत सरस और मधुर बनाया है। जायसी प्रेम और सौंदर्य के विशिष्ट रहस्यवादी कवि है। सूफी साधना में विरह का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। कहते हैं कि यदि विरह नहीं है तो तप, जप, धर्म, नेम आदि सभी व्यर्थ है। जैसे -

जब लगि विरह न होइ तन हिये न उपजइ पेम।
तब लगि हाथ न आव तप, करम, धरम सननेम।।

रहस्यवाद की अभिव्यंजना के लिए प्रतीक, लक्षणा अन्योक्ति और समासोक्ति आदि को माध्यम बनाया है। रहस्यवाद में सामान्य रूप से कुछ विशेषताएँ पायी जाती है। जैसे परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासा, कुतूहल या विस्मय भाव। विराट का दर्शन, परमात्मा के विभिन्न संबंधों की परिकल्पना, संयोग और विरह में तप करना, ब्रह्म में जीवात्मा का लय, पद्मावत में जायसी इसे बहुत ही सुंदर तरीके से चित्रित किया है। जैसे -

देखि एक हौं कोतुक रहा, रहा अंतरपट पै नहिं अहा।
सखर देख एक मैं सोई, रहा पानि पै पानि न होई
सरग आय धरती पै छावा, रहा धरत पै धरत न पावा।।

जायसी के रहस्यवाद में सूफियों के माधुर्य-भाव को प्राधान्य रहा है। रहस्यवादी साधक ईश्वर को अपने प्रियतम के रूप में देखता है और उससे मिलने के लिए आतुर रहता है। सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में प्रेमिक को भगवान का प्रतीक माना है। इसीलिए हमने पहले ही देखा है कि पदमावत में रानी पदमावती परमात्मा का रूप है। जायसी ने उस परम सत्ता के अतिरिक्त अपनी रहस्यात्मक उक्तियों में परम सत्ता के उस अव्यक्त स्थान की ओर भी संकेत किए हैं, जहां न सूर्य न चंद्र पहुंच पाते है जैसे -

चाँद सुरुज और नखत तराई,
तेहि डर अन्तरिख फिरहिं सवाई कहकर

चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र तारे आदि सभी के लिए अगम्य तो बनाया है ही, साथ ही पवन के लिए भी उसे अगम्य सिद्ध किया जैसे -

"पौन जाइ तहँ पहुचे चहा,
मारा तैस लोटि भुँइ रहा।"

और अग्नि उठी जरि बुझी निआना, धुओं को भी उस अगम्य अगोचर सत्ता तक पहुँचने की असमर्थता दिखाई है। इसी वजह से जायसी ने ऐसे अगम्य सत्ता को प्रत्येक जीवात्मा के शरीर-सरोवर में हृदय-कमाल के रूप में उस ब्रह्म का स्थान बताया है, जो स्थूल आँखों से तो निकट जान पडता है, किंतु अगाह जल में अवगाहन किये बिना उसे हाथ से कोई ग्रहण नहीं कर सकता।

इसके अलावा जायसी ने अपनी रहस्यात्मा और नेह उक्तियों में उस परमसत्ता के साधक साधना पथ एवं साधना-पथ के विघ्नों का भी बहुत ही सुंदर सजीव चित्रण किया है। हमने पहले भी देका है कि विरहदशा परमात्मा को पाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण कडी होती है। 'प्रेम-खंड' में जायसी ने परम सत्ता की प्राप्ति के लिए हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न होने पर साधक पागलों की सी दशा होती है जैसे 'उठा रोइ हो ग्यान सो खोआ' में साधक को एक बालक की तरह रोता हुआ दिखाया है।

जायसी ने अपने रहस्यवाद के अंतर्गत आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक मिलन की स्थिति का भी बहुत ही

मार्मिक चित्रण किया है। कवि ने स्वयं ही इस बात को माना है कि, "शृंगार करके उस प्रियतम से मिलने जाऊं तो किस स्थान पर जाऊं, क्योंकि मेरे प्रियतम तो कण-कण में, स्थान-स्थान पर मुझे दिखाई देते हैं।"

इस तरह जायसी ने पदमावत में रहस्यवाद की सभी स्थितियों को प्रस्तुत किया है। जायसी ने साधक की जिज्ञासा, साध्य के महत्व का प्रदर्शन, उसके दर्शन या मिलन के प्रयत्न, भौतिक संकट, विरह की वेदना, अपरोक्ष अनुभूति, मिलन की उत्सुकता, स्थिति का बहुत ही सजीव चित्रण किया है। जायसी ने रहस्यावाद में रहस्यात्मक अनुभूति को प्राधान्य दिया है। इसलिए चित्रण में संवेदनशीलत एवं सहानुभूति के साथ रोचक वर्णन भी मिलता है।

प्रकृति-चित्रण

जायसी ने पदमावत में प्रकृति को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। जैसे उद्दीपन के रूप में, वातावरण की निर्मिती के रूप में उपदेश और नीति के रूप में, अलंकार योजना के लिए मानवीय भावों की व्यंजना के लिए आदि।

1. उद्दीपन के रूप में प्रकृति-चित्रण - उद्दीपन का अर्थ वह तत्व जो रस को उद्दीप्त करता है, उसे आस्वाद के लिए योग्य बनाता है, उसे उद्दीपन कहते हैं। उदाहरण के लिए शृंगार के लिए, चांदनी, बगीचा सुगंधित एवं मादक पदार्थो प्रेमी प्रेमिका के प्रेम को उदीप्त करते हैं।

जायसी ने पद्मावती और रत्नसेन के उद्दीपन में षट्ऋतु जो संयोग की अवस्था दर्शाता है उसका उपयोग किया है तो नागमती और रत्नसेन के विरह में बारहमासा का उपयोग किया है जैसे -

प्रथम बसंत नवल रितु आई। सुरितु चैत नैसाऱ सोहाई
चंदन चीर पहिरि धनि अंगा। संदुर दीन्ह बिहरि भरि भंगा
कुसुम हार औ परिमल-बासु। मलियागिरि छिरिका कविलाय

नागमती रत्नसेन के विरह में चैत और बैसाख में तिल-तिल समय काटती है जैसे -

चैत बसंता होई धमारी। मोहि लेखें संसार उजार
पंचम बिरह पंच सर मारे। रकत रोइ सगरों बन ढारे
बूड़ि उठे सब नरिवर पाता। भीज मंजीठ टेसू बननात
मोरै अंव फरें अब लागै। अबहुँ सँवरि घर आउ स..
सहस भाव फूली बनफती। मधुकर फिरे संवरि मालती।।
या भा बैसाख तपनि अति लागी। चोवा चीर चंदन भौ
सूरुज जरत हिवैचल ताका। बिरह बजागि सौंह रथ होका।

जायसी विरह को प्रकृति के साथ जोडकर बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है।

2. उपमानों के रूप में प्रकृति-चित्रण - जायसी ने फारसी साहित्य में प्रयुक्त उपमानों के माध्यम से प्रकृति का चरित्र-चित्रण किया है। रूप सौंदर्य का वर्णन करते हुए लौकिक और अलौकिक सौंदर्याभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के उपमानों को प्रस्तुत किया है। जैसे -

सहस किरिन जो सुरुज दिखाई। देखि लिलार सोइ छिपि
कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन महं दामिनि परगसी।।
फूल दुपहरी जानौ सता। फूल झरहिं ज्यों-ज्यों कहवाता।।

मानव संवेदना में प्रकृति का किस तरह साथ रहता है इसका एक उदाहरण देखे -

"काह हंसौ तुम मौसौ किएउ सो नेह
तुम मुरक चमकें बिजुरी, मोहि मुख बरसै मेघ।।

इस तरह जायसी में बिजली का चमकना और 'मेह का बरसना में मानवीय भावों को प्रकृति की सहायसा से प्रस्तुत

किया है। विविध अलंकारों का उपयोग करते समय जायसी ने प्रकृति का सुंदर रूप सजाया है जैसे -

जनहुँ कँवल संगफूली कई। जनहु चांद संग तरई उई

नागमती के विरह भाव को प्रस्तुत करते हुए जायसी लिखते हैं -

ससियरि अगिनि बिरहिनि हिय जमा।

सुलगि सुलगि दगधै भै छारा।।

यह दुखदगध न जानै कंतू। जोबन जरम करै भसमंतू

पिय सौं कहेहु संदेसा ऐ भँवरा ऐ काग।

सौधनि बिरहें जरि गई तेहिक छुआँ हम लाग।।

3. वातावरण की निर्मिती के हेतू - जायसी ने पदमावत में प्रकृति का चरित्र-चित्रण करते समय अनेक स्थलों का वर्णन किया है जैसे सिंहल द्वीप के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन सिंहल के वैभव-चित्रण को पृष्ठभूमि बनाकर प्रस्तुत किया है।

जबहि दीप निअरावा जाई। जनु कविलासनिअर था आई।

घन अबराउ लाग चहुँ पासा। उठै पुहुमि हुति लाग अकासा।।

तरिवर सबै मलै गिरिलाए। भै जग छाँह रैनि होइ थाये।।

मलै समीर सोहाई छाहाँ। जेठ जाड़ लागै तेहि माहां।।

ओहि छाँह रैनि होइ आवै। हरिअर सबै अकास दिखावै।।

पंथिक जो पहुँचे सहि घामू। दुख बिसरै सुख होइ बिसराम्।।

जिन्ह वह पाई छांह अनूपा।। बहुरि न आइ सह यह धूप।।

जायसी ने यहा पर प्रकृति का चित्रण आलंबन रूप में किया है। सिंहल के चारों ओर अमराइयां है। शीतलमंद सुगंधित पवन से समग्र वायुमंडल अनुप्राणित है। वातावरण भी ऐसा शीतल है कि जेठ की गर्मी में भी ठंड महसूस हो।

4. नीति, उपदेश आदि के रूप में प्रकृति-चित्रण- जायसी ने मानव जीवन के नीति, नियम, की अस्थिरता की स्थिति में प्रकृति से प्रेरणा को प्रस्तुत किया है। प्रकृति प्रेरणा के साथ नीति और उपदेश भी देती है जैसे -

पीव-पीव कर लाग पपीहा। तुही तुही कर गडुरी जीहा

और मुहमद बाजी पेम कै ज्यो भावै त्यों खेस।

तिल फूलहिं के संग ज्यों, होय फुलायल तेल।।

5. षड् ऋतु का वर्णन - जायसी ने षड्ऋतु और बारहमासा के माध्यम से शृंगार का निवेदन प्रस्तुत किया है। पं. रामचंद्र शुक्ल जी के अनुसार "कालिदास के समय से या उसके कुछ पहले ही दृश्य वर्णन के संबंध में कवियों ने दो मार्ग निकाला स्थल-वर्णन में तो वस्तु वर्णन की सूक्ष्मता बहुत दिनों तक बनी रह, पर ऋतु-वर्णन में वस्तु-चित्रण उतना आवश्यक नहीं समझा गया जितना कुछ इनी-गिनी वस्तुओं का कथनमात्र करके भावों का उद्दीपन का वर्णन जान पडता है कि ऋतु-वर्णन वैसे ही फुटकर पद्यों के ही रूप में पढ़े जाने लगे जैसे बारमासा पढ़ा जाता है। अतः उनमें अनुप्रास और शब्दों के माधुर्य का ध्यान अधिक रहने लगा (पं. रामचंद्र शुक्ल : चिंतामणि, काव्य में प्राकृतिक दृश्य भाग - 2

पद्मावत में जायसी ने षड्ऋतु वर्णन पदमावती के हर्षातिरेक का चित्रण करता है।

'नवल वसंत ऋतु पदमावती' के लिए नवल, बसंत, नवल चैत और वैशाख की संपन्नता के साथ भौरों की पुष्प के संग क्रीडा-फाश खेलना, प्रस्तुत किया है। नई-नवेली दुल्हन के रूप में पद्मावती अपने पिया के घर में हर्ष और उल्लास के साछ हर पल बिताती है।

जेष्ठ और आषाढ़ में पदमावती को अपने प्रिय पिया का साथ है इसीलिए ऋतु की तपन का उसे अनुभव ही नहीं

मिलता। वह तो बस, ग्रीष्म के फल और पिया के साथ का ही अनुभव ले रही थी।

पावस ऋतु में सावन-भादों का कोयल की मधुन तान और सुहाने वातावरण में पदमावती अपने प्रियतम के साथ मस्ती में है।

कुमार-कार्तिक में षोडश शृंगार, नक्षत्रों से भरा आकाश पदमावती अपने प्रिय के गले में बाहें डालकर सुख का अनुभव लेती है।

हेमंत और शिशिर वर्णन में हंसयुग की भांति पदमावती और राजा रत्नसेन क्रीडा-रत में मग्न थे।

इस तरह जायसी ने षड्ऋतु वर्णन में संयोग स्थिति का वर्णन किया है।

बारह मासा का वर्णन तो नागमती के विरह का वर्णन है। रत्नसेन का पद्मावती के पास जाने से उसके विरह में व्याकुल हुई नागमती का चित्रण जायासी ने बहुत ही सुंदर, सहज एवं मार्मिक रूप से किया है। आषाढ़ में कोकिल की काकली, पपीहा की पी-पी विद्युत का वर्णन और ऐसे में रत्नसेन का पास न होना नागमती के लिए सुख होकर भी नहीं के बराबर है।

सावन में चारों ओर पानी बरस रहा और नागमती विरह में सूखी जा रही है।

कार्तिक में शीतलता होते हुए भी नागमती विरह अग्नि में जल रही है। जेठ में संसार जल उठता है, लू बहने लगती है, अंगार बरसने लगते हैं और ऐसे में नागमती दुःख में बंधी हुई मरणयातना का अनुभव ले रही है।

जायसी ने परवर्तित ऋतुओं के माध्यम से नागमती के विरह को प्रस्तुत किया है, इसके साथ ही प्रकृति का चित्रण भी जीवन हो उठा है।

सखर हिया घटत नित जाई। टूक टूक ह् वै कोवि
बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि दवंगरा मेखहु एका।।
कबँल जो विगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ।।
कबहुं बेलि पुनि पलुहै जो पिउ सींचे आइ।।

इसमें जायसी ने नागमती के हृदय की उपमा सूखे हुए सरोवर से की है।

इस तरह जायसी ने पदमावत में प्रकृति-चित्रण में मानवीय भाव-भावनाओं को प्रमुख प्रदानता दी है।

प्रमुख नारी चरित्र

जायसी ने पद्मावत में नारी चरित्र को एक विशेष रूप में प्रस्तुत करके एक नए आयाम को उजागर किया है। आदर्श नारी के गुणों को प्राथमिकता देते हुए उनके रूप एवं शील के पक्षों को भी प्रस्तुत किया है।

पद्मावत की नायिका रानी पद्मावती

पद्मावती एक अलौकिक सौंदर्य की स्वामीनी है। जायसी ने उसे एक सच्ची और आदर्श प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत किया है। पद्मावती एक आदर्श गृहिणी होते हुए भी उसमें बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता है जो उसे समय-समय पर सही निर्णय लेने में सहायता करती है। पद्मावती में निम्नलिखित गुणों को कवि ने उजागर किये हैं।

मेधावी पद्मावती

पद्मावती बचपन से ही अत्यंत बुद्धिमान थी। उसने पाँच वर्ष की आयु में ही धर्मग्रंथ पढ़ा था। बारह वर्ष में ही पंडिता बन गयी।

सरलभाव से युक्त बचपन - पद्मावती अपने सखियों के साथ अत्यंत प्रेमपूर्व व्यवहार करती है। बचपन में वह अपने सखियों के साथ खेलती - कूदती है, उनके साथ स्नान भी करती है। अपने सखियों के प्रति पद्मावती के मन में अगाध प्रेम है। इसलिए अपने ससुराल में जाते वक्त वह सखियों से जिस सच्चे स्नेह से मिलती है, उसमें करुणा के साथ पद्मावती उनके प्रति सखा भाव को भी प्रस्तुत करती है।

शूर विरंगना पद्मावती - पद्मावती एक क्षत्रिय विरंगना है। साहसी होने के साथ ही वह दूरदर्शिता भी है। पद्मावत में राहावचेतन को कंगन देने के प्रसंग में तथा गोरा-बादल को शुभ-चिंतक समझकर बंदी राजा को छुडाने का अनुरोध के प्रसंग में पद्मावती के यह गुण उजागर हुए हैं।

आदर्शता से परिपूर्ण नारी - कवि जायसी ने पद्मावती के चरित्र में एक आदर्श नारी का रूप उजागर किया है। राजा की चिता के साथ ही पद्मावती ने सती होने का निर्णय लिया। वह जलकर खाक हो गयी। इस संबंध में डॉ. वल्लभदास तिवारी के अनुसार “सती होने का दृश्य तो वह पुनीत दृश्य है, जिसमें पद्मावती के प्रेम, विवेक, शुद्ध आचरण तथा धर्मपरायणता का पूर्ण प्रकाश है।”

नागमती - पद्मावत में दूसरी प्रमुख नारी चरित्र है नागमती, जिसे जायसी ने उपनायिका के रूप में प्रस्तुत किया है। वह राजा रत्नसेन की प्रथम विवाहिता पत्नी है। अतः राजा के प्रेम पर वह अपना सर्वाधिकार स्थापित करना चाहती है।

नागमती एक ईर्ष्यालु नारी - जायसी ने नागमती को एक ईर्ष्यालु नारी के रूप में चित्रित किया है। उसकी ईर्ष्या की प्रवृत्ति पद्मावत में कई जगहों पर दिखाई देती है। तोते के मुख से रानी पद्मावती के सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर वह सुग्गे को दासी से मार देने को कहती है।

आदर्श गृहिणी के रूप में नागमती - नागमती का राजा रत्नसेन पर अपार प्रेम है। जब राजा सिंहलद्वीप पर जाने लगे तो उन्हें देखकर नागमती भी उनके साथ चलने को तैयार हो गयी। रत्नसेन उसके इस प्रस्ताव को ठुकराकर उसे अल्पबुद्धि कहकर चला जाता है। नागमती अपना जीवन पति विरह में बिताती है।

सौतिया डाह से युक्त क्षत्राणी - नागमती का राजा रत्नसेन पर अत्याधिक प्रेम था। इसी प्रेम ने उसे ईर्ष्यालु बना दिया था। वह पद्मावती को एक पल भर के लिए भी सह नहीं पाती थी

नागमती में अनेक गुण अवगुण थे। परंतु उसका निस्सीम प्रेम रत्नसेन पर था। इसीलिए वह एक आदर्श पत्नी के नाते सती भी हो जाती है। यह आदर्शतता नागमती को एक विशेष ऊँचाई पर ले जाती हैं।

लोकतत्व

जायसी जन-जीवन के बहुत ही करीब थे। लोकतत्व के लिए कहानी का माध्यम सबसे आकर्षक होता है। पद्मावत में प्रस्तुत पद्मावती रानी का कहानी भारतीय लोक-जीवन की एक अत्यंत प्रचलित कहानी है। संपूर्ण उत्तर भारत में यह कहानी कई ढंगों में गायी जाती है। जायसी ने पद्मावत में उन समस्त रूपों को एकत्रित करके राजारानी के स्थान पर पद्मावती तथा मुसलमान आक्रमक के स्थान पर अलाउद्दीन तथा दिल्ली चित्तौर आदि ऐतिहासिक नामों का उपयोग कर सारी कथा को एक अद्भुत ऐतिहासिक शृंखला में बांध दिया है। उत्तर भारत में विशेष रूप से अवध में रानी पद्मीनी और हीरामन सूआ की कहानी अब तक प्रायः उसी रूप में कही जाती है जिस रूप में जायसी ने इसका वर्णन किया है। जायसी ने इतिहास का बहुत ही अच्छी तरह से अभ्यास किया था, इसलिए उन्होंने अपनी कहानी में रत्नसेन, अलाउद्दीन जैसे नामों का इस्तेमाल किया जो तत्कालीन जनता में काफी लोकप्रिय थे। जायसी ने जहाँ हिंदू घराने की लौकिक प्रेम कहानी के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की वही हिंदू-मुस्लिम संस्कृतियों का भी समन्वय किया।

जायसी ने पद्मावत की कथा को हिंदू धर्म की प्रधान बातों को आधार बनाकर उसे पूरी गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया। अवधी भाषा के प्रयोग के साथ भारतीय छंदों-दोहा-चौपाई आदि का भी सुंदर निर्वाह किया है।

मुहूर्त, शकुन, अपशकुन, ज्योतिष आदि पर विश्वास लोकतत्व का महत्वपूर्ण अंग है। लोकतत्व के अंतर्गत लोक कथाओं, लोकगीतों, लोकनृत्यों का भी वर्णन मिलता है जिसमें बसंत त्यौहारों का वर्णन भी प्रस्तुत है।

जायसी की काव्य - कला

जायसी का पद्मावत शृंगार प्रधान काव्य है। इसमें संयोग और वियोग दोनों को ही सहज स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत

किया है। नागमती के विरह को कवि ने अमर बना दिया। एक तो विरह में प्रेम की वह स्थिति होती है जहाँ पर एक विलक्षण तीव्रता, और अनोखी निराली तड़प होती है। तो दूसरे जायसी ने अपने हृदय की कोमल वेदना को नागमती के आँसुओं में भिगोकर उसे मणि-कांचन योग कर दिया है। जायसी के विरह वर्णन में इतनी व्यापकता, तीव्रता है कि समस्त जगत् जड एवं चेतन सभी उससे द्रवीभूत हो गए। पदमावत एक प्रबंध काव्य है, अतः इसमें शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी समावेश हुआ है। राजा रत्नसेन के सिंहत्व गमन, रानियों का विलाप तथा रत्नसेन की मृत्यु के प्रकरणों में करूण रस का अच्छा परिपाक हुआ है। युद्ध वर्णन में बीभत्स का अच्छा उद्रेक हुआ है। क्षात्र तेज संपन्न गोरा-बादल आदि पात्रों में तीर रस की भी सुंदर व्यंजना हुई है। रत्नसेन के वैराग्य वृत्ति धारण करने पर शांत रस का निर्वाह हुआ है।

पद्मावत एक घटना प्रधान काव्य है, अतः जायसी ने इसे रसात्मक बनाने के लिए वर्णनात्मकता पर अत्याधिक बल दिया है। पर अनेक स्थलों पर वर्णनात्मकता की वृत्ति इतनी बढ़ी हुई दिखाई देती, जिससे पाठक ऊबने लगता है जैसे - सिंहल द्वीप में फूलों और फलों का वर्णन, हठयोग का विस्तृत वर्णन ये ऐसे स्थल है जिनके वर्णन में कथा प्रवाह में कथा पहुँची है।

जायसी ने सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का प्रयोग ज्यादा हुआ है। इन सभी अलंकारों में से रूपकातिशयोक्ति द्वारा जायसी ने अद्भूत कौशल दिखाया है। इसके अतिरिक्त श्लेष, व्यक्तिरेक, विभावणा, संदेह, अनुप्रास अलंकारों का भी सफल प्रयोग किया है।

जायसी ने छंद में दोहा, चौपाई को प्रस्तुत किया है। उन्होंने अवधी भाषा की स्वाभाविकता, सरसता और मनोगत भावों के प्रदर्शन से काव्य मनोहर बन पडा है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में "जायसी एक महान कवि है। उनमें कवि के समस्त सहज गुण विद्यमान है। उसने सामायिक समस्या के लिए प्रेम की पीर की देन दी। उस पीर को अपने शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया। वह अमर कवि हैं।"

अध्याय - 2 कबीर

कबीर की रहस्यानुभूति और प्रेम हमने जायसी की रहस्य-भावना पहले ही देखी थी। भारतीय जीवन दर्शन और साहित्य-साधना में रहस्य साधना की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। भक्ति-कालीन साहित्य की निर्गुणवादी काव्यधारा की दोनों शाखाओं ने ज्ञानमार्गी और प्रेम-मार्गी का मूलाधार की रहस्य साधना को स्वीकारा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के अनुसार "साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।" मूलतः रहस्यवाद का संबंध अध्यात्मिक साधनों के साथ ही स्वीकारणीय होता है। कहते हैं कि ब्रह्म के आध्यात्मिक या प्राकृतिक स्वरूप के साथ आत्मा की भावात्मक एकता को अनुभूति का नाम ही रहस्यवाद है। कबीर साधक और कवि इन दोनों के रूप की ओर लक्षित करते हुए कहते हैं कि, "लोग जाने यह गीत है, यह तो ब्रह्म विचार।" इससे स्पष्ट है कि कबीर अध्यात्मवादी चेतना से अनुप्रणित होकर परब्रह्म के बारे में जो कुछ अनुभव कर रहे थे उसी को अपनी वाणी द्वारा प्रकट किया है। कबीर ने ईश्वर को हमेशा अखंड एवं व्यापक रूप में देखा है -

कबीर का प्रेम-भाव भक्ति को ही समर्पित है। उनकी प्रेम-भाव भक्ति का आशय सगुणोपासकों के समान सगुण साकार स्वरूप के प्रति आसक्ति नहीं है। उन्होंने तो विशुद्ध प्रेम के सहारे ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त की। इसलिए उनकी प्रेमाभिव्यक्तियाँ अपने आप ही रहस्यरूप एवं रहस्यवाद की सृष्टि करने वाली हो गई हैं। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार "कहीं पर उनमें सूफियों के प्रेम-मार्ग का निरूपण मिलता है, कहीं पर हठयोगियों के परिभाषिक शब्दों एवं प्रक्रियाओं का रहस्यात्मक वर्णन है। कहीं वे सिद्धों की संध्याभाषा शैली में तत्व का प्रतिपादन करते हैं। यही कारण है कि उनकी रहस्य-भावना विविध-रूपिणी है तथा उसकी अभिव्यक्ति के विविध स्वरूप स्तर और सोपान है।" कबीर जिस शून्यसाधना की बात कहते हैं, वहां उनका संकेत वस्तुतः नागपंथियों के समान अलख किंतु ज्योति स्वरूप परब्रह्म की सत्ता की ओर ही होता है, बौद्ध की तरह निरीश्वर सत्ता की ओर कदापि नहीं।

जाकै मुंह माया नहीं, नहीं, रूप-कुरुप।
पुहुप बास तैं पातरा ऐसा तन्त अनूप।।

कबीर की रहस्यानुभूति में समन्वयता है जैसे -

"भारी कहूं तो बहु उरुं, हरुवा कहूं तौ झूठ।
मैं क्या जनूं राम को, नैना कबहुं न दीठ।।

कबीर इस बात को मानते थे कि रहस्यावादी के लिए प्रेम और भावना दोनों का होना आवश्यक है। इसीलिए उन्होंने निर्गुण भक्ति का महत्व प्रस्तुत किया है। भगत और भक्ति का महत्व प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं -

"भगत हजारी कापडा, तामै मल म समाइ।
साकत काली कामरी, भावे तहाँ बिछाइ।।"

कबीर कहते हैं कि उसकी कृपा के बिना आत्म-साक्षात्कार या आत्मा में ब्रह्म का साक्षात्कार का प्रश्न ही नहीं उठता उसकी कृपा और उसके प्रति पूर्ण प्रेम भाव के उदय के लिए उसके गुणों को जानना जरुरी है। और इसके लिए गुरु के सिवा और कौन सहायता कर सकता है।

"सतगुरु की महिमा अनंत - अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उधाड़िया, उनंत दिखावन हार।।"

और जब गुरु की कृपा से उस अनंत के दर्शन हो जाते हैं तब उस परम प्रिया की झांकी की अनुभूति साधक की समस्त चेतना को ही झकझोर कर जाती है जैसे -

"कबीर पैख्या एक अंग महिमा कही न जाय।
तेजपुंज पारसमणि नैनूं रहा समाय।"

इसी स्थिति को रहस्य-साधना में 'ज्ञान-जागृति' की अवस्था कहा गया है। कबीर की अनेक सखियों में इसका उल्लेख मिलता है -

"हरि रस पीया जाणिये, जे कबहुं न जाय खुमार।
मैमन्ता घूमत रहैं, नाहीं तन की सार।"

कबीर ने रहस्य-साधना में बाधक रूप में माया के अस्तित्व को भी स्वीकारा है। रहस्य-साधना का तो मूलतत्व प्रेम है, तो विरह सभी प्रकार से आत्मा का परिष्कार करने वाला, इसलिए तो कबीर कहते हैं -

"बिरहा बुराइ जनि कहौ, बिरहा है सुलतान।
जिहि घट बिरहा न संचरे, सो घट सदा मंसान।"

कबीर के अनुसार विरह के कारण ही आत्मा-परमात्मा का मिलन होता है - "बिरह कहै कबीर सों तू जिन छांडे मोहि। पार ब्रह्म के तेज में तहां लै राखौं तोहि।।"

दाम्पत्यभाव में प्रेम और विरह की अनुभूति प्रधान हुआ प्रेम और विरह की अनुभूति प्रधान हुआ करती है इसलिए कबीर ने रहस्य-साधना में दाम्पत्य भाव को भी महत्व दिया है। अपनी आत्मा को 'राम की बहुरिया' कहकर संबोधित करते हैं। इसी आधार भूमि पर उन्होंने प्रेम-विरह की विभिन्न अवस्थाओं एवं भंगिमाओं का वर्णन किया है। कबीर इस तत्व को मानते हैं कि दाम्पत्य भाव ही साधक को नैतिक बना सकता है। जैसे

"केवल नाम जपहु रे प्रामी,
परहू एक कै सरना।"

और जब यही रहस्य-साधना अपने चरम सोमा पर पहुंचती है तब,

"लाली मेरे लाला की जित देखूं तित लाल।
लाली खोजन मैं गई मैं भी हो गई लाल।।"

इस प्रकार हमने देखा कि रहस्य-साधना की जितनी स्थितियां और स्वरूप मिलते हैं वे सभी कबीर काव्य में प्रस्तुत हुए हैं। इस तरह की रहस्यानुभूति के साथ ही कबीर मनुष्य-जन्म की सार्थकता प्रेम के संबंध से ही मानते हैं। उनके अनुसार प्रेम कभी क्षणिक नहीं होता वह तो दिन-दिन नवल ज्योति से ज्योतिर्मय होता चला जाता है -

"दास कबीर पल प्रेम न घटई।
दिन दिन प्रीति नई।"

कबीर प्रेम के क्षेत्र में जितना आदर अपने प्रिय का करते हैं उतना ही राम-प्रेमी साधु-संतों का भी करते हैं वे कहते हैं कि यदि प्रिय कल्याण का लक्ष्य है, तो साधु-जन उनको उस लक्ष्य तक पहुंचाने वाले हैं -

"मेरे संगी दोइ जणां एक वैष्णों एक राम।
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाम।।"

कबीर अहंकार और ममता को प्रेम मार्ग की बाधाएँ मानते हैं। उसी तरह कुल-मर्यादा एवं लोक-लज्जा की पाश में प्रेम बांधा नहीं रह सकता। प्रेम के मार्ग में छल-कपट को तिनके भर की भी जगह नहीं है, अतः कबीर समता को महत्व देते हैं। साथ ही विश्वास को बिना प्रेम उसी प्रकार नहीं ठहर सकता जिस प्रकार बालू की भीत नहीं ठहर सकती - "जिनि गाया बिसवास सूँ तिन राम रघ्या" कबीर निष्काम प्रेम को अधिक महत्व देते हैं -

'जब लग भगति सकामता तब लग निर्फल सेव।
कहै कबीर वै क्यूं मिलै, निहकामी निज देव।"

कबीर का प्रेम व्यापक है। वे विश्व के कण-कण को प्रेम - सिक्त देखते हैं। इसीलिए कबीर की आध्यात्मिक प्रेम-साधना में अहिंसा को बहुत बड़ा स्थान है। उनका ईश्वर-प्रेम जीवन-मात्र के प्रेम से सरसित है। मानव ही नहीं पशु-पक्षियों की रक्षा भी उनके आध्यात्मिक प्रेम का एक अंग है। वे जहां मानव मात्र के प्रेमी है वहा जीव मात्र के प्रेमी भी है।

कबीर की भाषा

कबीर के बारे में प्रसिद्ध है कि वे साक्षर या पढ़े-लिखे नहीं थे, वे बहुश्रुत थे। वस्तुतः भाषा के स्तर पर भी वे बहुश्रुत ही थे। इसी कारण उन्होंने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया। वैचारिक अनेकत्व के समान उनके भाषा में भी अनेकता एवं समन्वय का तत्व मिलता है। कबीर घूमने-फिरने वाले साधु थे। अपने विचारों को वे सभी जगह, देश के कोने-कोने में पहुंचा देना चाहते थे इसलिए उन्होंने स्थान-स्थान की भाषा से अपना संपर्क स्थापित करके अपने भावों को एक ऐसी भाषा में व्यक्त किया है जो अधिक से अधिक लोगों की समढ में आ सके। इसके परिणाम स्वरूप उनकी भाषा में अनेक स्थानों और भाषाओं की शब्दावली का मेल मिलाप हो गया।

कबीर की भाषा में अनेक देशों या स्थानों की शब्दावली दिखाई देती है। कबीर के अनेक शिष्य थे उनकी शिष्यमंडली में भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लोग सम्मिलित थे। उन्होंने कबीर वाणी को यथाशक्ति ज्यों का त्यों सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया फिर भी उनकी अपनी अपनी भाषा का प्रभाव किसी न किसी रूप में आ ही गया। कबीर की भाषा को साधु-भाषा, सधुक्कडी, खिचडी, या मिश्रित भाषा ही कहा जा सकता है।

कबीर की वाणी में यत्र-तत्र शुद्ध खडी बोली के रूप भी प्रायः मिलते हैं। आचार्य शुक्ल जी खडी बोली के शब्द-रूपों के प्रयोग की परंपरा को सिद्धों की देन मानते है। उनके अनुसार उपदेश देने के क्षणों में कबीर आदि सभी संतों की भाषा प्रायः खडी बोली हो गई है। जैसे - पियाए, अकेला, झूठा, भला, का, था, थे, भया, गा, गे, गी, आदि रूप खडी बोली के ही हैं। डॉ. भगवतप्रसाद दुबे के अनुसार कबीर की वाणी में खडी बोली की संज्ञाओं का प्रयोग 202 बार, विशेषणों का 24 बार, परसर्गो का 1001 बार सर्वनामों का 749 बार और क्रियाओं का 3907 बार हुआ है। कुल प्रयोग की दृष्टि से कबीर की वाणी में ब्रज भाषा के शब्दों की कुल संख्या (6847) के बाद खडी बोली का ही क्रम आता है। कुल योग बनता है - 5893 शब्द। एक साखी थी उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती है, जिसमें समग्रतः खडी बोली का ही प्रयोग है।

"भारी कहूं तो बहु डरूं, हलका कहूं तो झूठ। मैं क्या जानों राम को, नैनों कबहूं न दीठ।"

डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार कबीर की काव्यभाषा का रूप अधिकतर विषय, व्यक्ति और भाव के अनुकूल है। जब वे किसी मुसलमान को कोई बात समझाते थे या किसी इस्लामी बात को समझाना चाहते थे तो वह फारसी-मिश्रित उर्दू का प्रयोग करते थे। इस प्रकार हिंदू धर्म की चर्चा करते समय तथा पंडितों को समझाते समय शुद्ध हिंदी का प्रयोग करते थे।

जैसे - "मीयां तुम्हसौ बोल्यां वाणी नहीं आवै।
हम मसकीन खुदाई बंदे, तुम्हारा जस मनि भावै।।
'अल्लाह अवलि दीन का साहिब, जारे नहीं फरमाया।
मुरसिद पीर तुम्हारे है को, कहौ कहां थे आया।'

ऐसे ही हिंदूओं के महात्माओं का संतों का लक्षण बताते हुए कहते हैं -

निरबैरी निहकामता, सांई सेती नेह।
विषिया सूं न्यारा रहै, संतनिका अंग एह।।"

आधुनिक साहित्यिकों में भी कबीर की भाषा को लेकर निरंतर चर्चा चलती आ रही है किंतु अब तक कोई एक मत स्थापित न हो सका। किंतु यह बात तो सभी मानते है कि कबीर की भाषा में निराडम्बरता, सहजता, सरलता, स्पष्टता

आदि गुण विद्यमान हैं। सरल एवं गर्भ सारित दोहे को देखे

"काल्ह करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरी करेगा कब।।"

इस दोहे में जो सरलता, स्पष्टता होते हुए भी उसमें सांकेतिक पारिभाषिक एवं प्रतीकात्मकता है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर की भाषा के विभिन्न रूपों को उदाहरण देकर प्रस्तुत किए हैं जैसे -

अवधी - 'जस तस तोहि कोई न जान' और तैसे नाचत मैं दुःख।

भोजपुरी - "ना हम जीवत मुव न ले मांही"
और
दांत गैल मोर पान खात, केस गैल मोर गंग नहात

ब्रजभाषा - 'अपनयौ आपुन ही विसरयौ'
और
लेटयौ भोमि बहुत पछितानौ, लालचि लागौ करत कब।

खडी बोली - 'करणी किया करम का नास"
तथा
यह मन चंचल चोर है, यह मन सुद्ध ढगार।"

पंजाबी- 'लूण विलग्गा पांणियां पांणी लूण विलग्ग।'

राजस्थानी- 'वया जाणों उस पीव कूं, कैसे रह सौ संग"
तथा
'बीछडिया मिलितौ नहीं, ज्यों कांचली भुवंग।"

इन सब उदाहरणों से कबीर की भाषा में कितनी सारी भाषाओं का मिश्रण है यह दिखाई देता है।

कबीर की भाषा पूर्ण रूप से सधुक्कडी सरल एवं स्पष्ट है। उसमें व्यर्थ के अलंकार नहीं पाए जाते। उनकी अभिव्यक्ति की सरलता ही उनकी भाषा का सौष्ठव उनकी भाषा की सरलता का यह प्रमाण है कि पूरा काव्य साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति के भी सहज रूप से समझ में आता है। इसी लिए आम जनता में जितना प्रचार कबीर के काव्य का है, उतना किसी अन्य कवि का नहीं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "कबीर अत्यंत सीधी भाषा में गहरी चोट करते हैं कि चोट खाने वाला केवल धूल झाड़कर चल देने के सिवा और कोई रास्ता ही नहीं पाता।" और फिर अनकही कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकद कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत से अन्य लेखकों में नहीं पायी जाती।

कबीर की दार्शनिक विचारधारा

कबीर निर्गुण काव्य धारा के ज्ञानश्रयी शाखा के संत थे। उनका ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अजन्मा, अचिन्त्य, अविगत और अलक्ष्य है। अपने ब्रह्म का वर्णन करते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है कि जो जन्म या अवतार धारण करता है, वह उनका ब्रह्म नहीं है। अपने 'साहब' समझाने के लिए पुराणप्रतिपादित अनेक अवतारों का उल्लेख कर यह बात स्पष्ट की है कि उनका साहब इनमें से एक भी नहीं है। उन्होंने दशरथ सुत राम को अवतारी पुरुष के रूप में नहीं लिया जैसे -

"नां दसरथ घरि औतरि आवाष नां लंका का राव सताव देवै कोरिव न औतरि आवाष नां जस वै लै गोद खोलावा नां वो ग्वालन कै संगि फिरिया। गोबरधन लै नां कर धरिया बांवन होइ नहिं बलि छलिया। धरनीं बेद ले न ऊधरि गंडक या लिगराम न कोला। मच्छ कच्छ होइ जलहिं न डोला बद्री बैसि ध्यान नहिं लावा।" "परसुराम खत्री न सतावा

द्वारावती सरीर न छांडा। जगन्नाथ लै पिंड न गाड़ा।। कहै कबीर बिचारि करि, ए उले ब्यौहार। या ही तैं जो अगम है, सो बरति रहा संसार।।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिए। इसी से उनके तथा निर्गुणवाद वाले और दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है, कहीं योगियों की नाड़ी-चक्र की और कहीं अहिंसावाद की। अतः तत्व की दृष्टि से न तो हम उन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी दोनों का मिला-जुला भाव इन की वाणी में मिलता है।"

कुल मिलाकर कहा जाय तो कबीर निश्चित रूप से 'समन्वयवादी' थे। कबीर ने विभिन्न संप्रदायों के सज्जनों, संतों, साधुओं के संपर्क में आकर, उनसे सत्संग कर जो कुछ भी सुना उसी के सार-तत्व को ग्रहण कर अपने मतों एवं दार्शनिक चेतनाओं का निर्धारण किया। इसीलिए इनकी चेतनाओं में पुराणपंथियों जैसी कहरता कहीं दिखाई नहीं देती।

कबीर की वाणी का गंभीर अध्ययन यह तथ्य सहज रूप से उजागर कर देता है कि वे दार्शनिक प्रविधाओं से भली भांति परिचित थे -

"तुम्ह जिनि जांनौ-गीत है यहु निज ब्रह्म विचार
केवल कहि समुझाइया आतप-साधन सार रै।"

कबीर ने ब्रह्म-तत्व, जीव-तत्व, जगत-तत्व एवं माया-तत्वदर्शन पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। प्रायः संत दर्शन में ब्रह्म जीव जगत् इन तीनों और इनके स्वरूप आदि के साथ सब पारंपारिक संबंधों पर ही मुख्य रूप से विचार किया गया है। ब्रह्म-तत्व-हमने पहले ही देखा है कि कबीर निर्गुणवादी संत थे। अतः उनके राम दशरथ पुत्र नहीं थे। उनके आराध्य तो आगम थे, अतः उसे आँखों से देखा नहीं जा सकता। उसे तो ज्ञान-साधना के बल पर अपने अंदर ही अनुभव किया जा सकता है। स्वामी रामानंद के शिष्यत्व या प्रभा के कारण कबीर को ब्रह्म के विविध नामों - संबंधों में 'राम' नाम सर्वाधिक प्रिय है। उनके राम अद्वैत से परे द्वैताद्वैत, अस्ति-नस्ति की भाव-भूमि से भी कहीं उपर उठकर परम सूक्ष्म है जैसे -

"जाके मुंह माया नहीं, नाहीं रूप-कुरूप।
पुहुप बास तैं पातरा, ऐसा तत्त अनूप।"

कबीर की दार्शनिक चेतना में निवास करने वाला ब्रह्म तत्व अत्यंत सूक्ष्म, व्यापक, सर्वत्र रमण करने वाला निर्गुण, निराकार और निर्विकल्प है। इस सूक्ष्म स्वरूप को समझ कर अपनी अंतरात्मा में ही उसकी अनुभूति की जा सकती है।

जीव-तत्व कबीर ने ब्रह्म तत्व के समान ही जीव या आत्मा संबंधी दर्शन को भी महत्त्व दिया है। उनके मतानुसार जीव उस अजर-अमर अविनाशी ब्रह्म का अंश है। इसी लिए वह एक अविनाशी तत्व है। माया के आवरण के कारण ही वह विभिन्न प्रतीत होता है। मायाजन्य आवरण की समाप्ति पर यह भेद स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

कबीर के अनुसार आत्मा परम परमार्थ है। वह अनंत है, निर्गुण है, सर्वव्यापी तत्व है, वह सभी में समान रूप से समाविष्ट है -

अकल निरांजन सकल सरीरा।
ता मन सौं मिली रहा कबीरा।।

सभी विद्वानों के मतानुसार कबीर का आत्म-तत्व-चिंतन अधिकतर भारतीय उपनिषदों एवं श्रीमद् भागवत् गीता के अनुरूप है। गीता के आधार पर वह कहते हैं -

"आपे गगनां अंतो गगनां,
मध्दे गगनां भाई।"

आदि मध्य, अंत - सर्वत्र वह एक तत्व ही समाया हुआ है कबीर जी का आत्मदर्शन नाथ-पंथियों के माध्यम से बौद्ध

दर्शन से भी काफी प्रभावित है।

"अँसे हम लोक बेद के बिछुरे सुविहिं मांहि समावहिंग आत्मा-ब्रह्म की एकता" - कबीर के अनुसार आत्मा और ब्रह्म एक ही है। दोनों को एक दूसरे से अलग करना मुश्किल है।

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
बूँद समांनी समुंद मैं सो कत हेरी जाइ।।

शरीर के न रहने पर आत्मा और परमात्मा इस तरह एक हो जाते हैं जैसे जलाशय में पडे हुए घडे के भीतर बाहर पानी रहता है, जब धडा फूट जाता है तब बाहर का भीतर का पानी एक हो जाता है।

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहरि भीतरि पांनी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समांना यहु तत कहौ गियानी।।

इस तरह कबीर की दार्शनिक चेतना के धरातल पर उनके राम द्वैत-अद्वैत से परे हैं। उनकी ब्रह्म-संबंधी अवधारणा, जगत् और माया संबंधी विचार आदि सभी कुछ भारतीय उपनिषदों, गीता और शंकर के अद्वैतवादी विचारों के ही अधिक निकट हैं। उनके आराध्य निर्गुण, निराकार, घट-घटवास ब्रह्म है जिसे वह 'राम' के रूप में देखते हैं। अतः कुल मिलाकर कबीर की दार्शनिक चेतना को भारतीय धारा की अपनी अलग खुशबू की देन ही कहा जा सकता है।

हिंदी साहित्य में कबीर का स्थान

कबीर के समय देश में धर्म की एक अलग धारा बहने लगी थी, वह भी सूफी साधना की धारा। सूफी लोग इस्लाम के एकेश्वरवाद से संतुष्ट न थे और भगवान को विशिष्टाद्वैतवादी वेदान्तियों की तरह मानते थे। ये लोग मुसलमान उल्माओं की तरह कट्टर और संकीर्ण मतवादी न थे और नही इन्हे मुस्लिम धर्म के कर्मकांड पक्ष (शरीत्रत) पर विश्वास था। इस तरह कबीर के समय में और उससे पहले धार्मिक आंदोलनों के रूप में जनता का विद्रोह तीन धाराओं में और जनवादी कबीर ने इन तीनों को सम्यक रूप से आत्मा करके सर्वसाधारण जनता के लिए सामान्य मार्ग का निर्देश किया जो हिंदी साहित्य में एक "मील का पत्थर" साबित हुआ - "पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंजित भया न को या, ढाई अक्षर प्रेम के पढे सो पंडित होय।।"

कबीर ने जातिगत, वंशगत, धर्मगत, संस्कार गत, विश्वास और शास्त्रगत रुढ़ियों और परंपरा के मायाजाल को बुरी तरह से तहस-नहस किया है। एक ओर वे पंडितों को खरी-खोटी सुनाते हैं तो दूसरी ओर मुल्लाओं की कटु आलोचना करते हैं। एक ओर मंदिर और तीर्थाटन आदि की निस्सारता बताते हैं तो दूसरी ओर मस्जिद और हज्जनमाज की निरर्थकता सिद्ध करते हैं जैसे -

अरे इन दोउन राह न पाई,।
हिंदुअन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई।।

कबीर का विद्रोह उनके काव्य के माध्यम से भरपूर फीट पड़ा। उन्होंने समाज की हर कुरीतियों पर खुलकर हमला किया।

भक्ति के मार्ग पर भी कबीर ने समाज के सामने परंपरागत चली आई धारणाओं को एक नये, सहज, सुलभ रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किया। कबीर ने वैष्णव भक्ति की शृंखला को सुरक्षित रखते हुए एक कड़ी को बदल कर दूसरी को लगा दिया है और वह कडी है निराकार और निर्गुण की उपासना। गीता ने जिस भक्ति को प्रस्तुत किया था उसमें सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार, दोनों की उपासना के लिए अवकाश था। लेकिन साकारोपासना के भविष्य के लिए कुछ अधिक आकर्षक धरातल निर्मित कर दिया था।

कबीर ने भक्ति का वह रूप चुना जिसे किसी भी स्थान या समाज में स्वीकृत किया जा सकता था। उनकी भक्ति का

रूप वैष्णव भक्ति का था, किंतु उसको निर्गुण और निराकार से संबंधित करके विशेष से निर्विशेष बना दिया। साथ ही उसे सामाजिक या धार्मिक रुढ़ियों से मुक्त करके प्रत्येक उपासक के लिए सुलभ कर दिया। बाह्याडंबरों से मुक्त होकर कबीर ने भक्ति को सरल भी बना दिया। कबीर के राम में जिस प्रकार 'अल्लाह' का रूप भी दिखाई देता है, उसी प्रकार अल्लाह में 'राम' का रूप दिखाई देता है। कबीर का राम या अल्लाह किसी स्थान या धर्म के बंधन में नहीं है। वह सब में है और सब उसमें हैं।

"जो ब्रह्मांड में है वही पिंड में भी है" यह कहते हुए कबीर कहते हैं कि भीतर कोई और राम है और बाहर कोई और, ऐसा न कोई समझ ले। कबीर के नाम-स्मरण का आदर्श है मन को राम के साथ इस प्रकार जोड देना कि दोनों में अभेद हो जाए।

संक्षेप में यह कह देना उचित होगा कि भारतीय भक्ति-शृंखला में कुरीतियों का खुलकर विरोध करने में कबीर ने बहुत बड़ा योगदान दिया है। यह एक ऐसा योगदान है, जिसने भक्ति को न केवल विकारमुक्त ही किया, लेकिन उसके द्वारा सामाजिक परिस्थितियों के सुलझाने की दिशा में एक अनूठी कड़ी बनाई है। उनकी दृष्टि में, काव्य में ऐसी चेष्टा थी, जिसमें सामाजिक अखंडता एवं लोक-कल्याण की भावना निहित थी। यह भावना देश और काल की सीमाओं से मुक्त होकर मान-मात्र से संबंध रखती है। इसी वजह से हिंदी साहित्य में कबीर का स्थान एक दीपस्तंभ की तरह है जो अनंत काल एक दुनिया को मार्ग दिखाती रहेगी।

कबीर काव्य की प्रासंगिकता

हमने पहले देखा है कि कबीर के वक्त सामाजिक स्थिति कैसी थी। समाज अपनी ही व्यवस्थाओं में बुरी तरह पीस रहा था जन सामान्य की स्थिति तो दिन-ब-दिन बदत्तर बनती जा रही थी। चारों ओर अनेक प्रकार के आडंबरों एवं पाखंडों का राज था। धार्मिक रुढ़ियों एवं विविध अंधविश्वासों का शिकार होकर समाज सर्वथा पतनोन्मुख हो रहा था। अनेक संप्रदाय अपने चमत्कारों से समाज को गुमराह कर रहे थे। सारा समाज दूषित हो रहा था। पारस्पारिक घृणा, वैर-विरोध, राग-द्वेष, जीवन-समाज को जर्जरित कर रहे थे। जातिवाद, ऊँच-नीच की घोरता, बाह्याचारों की घोर विषमता से समाजग्रस्त

"संतो दोऊ राह हम दीठा।
हिंदू तुरक हटा नहीं मानै, सवाद स बन कौ मीठा।।"

या

"पंडित भूले पढ़ि गुनि वेदा। आपु अपन पो जान न भेद
अति गुन गरब करै अधिकाई। अधिकै गरब न होई भला।"
"पाथर पूजै हरि मिलै, तौं मैं पूजूं पहार।
तातै यह चक्की भली पिसि खाए संसार।"

कबीर के काव्य पर दृष्टि डाले तो उस वक्त के समाज का दर्शन होता है, और हम अगर आज के समाज पर दृष्टि डाले वह समाज आज भी दिखाई देता है, इसलिए काव्य भी आज का ही लगता है। कबीर किसी भी प्रकार के छुआ-छूत या वर्ग-भेद पर विश्वास नहीं करते थे। वे जातिभेद के कहर विरोधी थे। वे केवल सच्चयिता, वैचारिक पवित्रता एवं दृढ़ता के साथ-साथ हरि-भक्ति पर ही विश्वास करते थे।

"जाति-पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि को हो।"

मानव-समाज के उद्धार के लिए वे कहते हैं -

"कौन मरै कौन जनमें आई।
सरग नरक कौनें गतिं पाई।।
पंच तत्त अविगत तै उत्पनां एकै किया निवासा।

बिछरें तत्त फिर सहिज समांनां रेख रही नहिं आसा

आदै गगनां अंतै गगना मधै गगना भाई।

कहै कबीर करम किस लागै झूठी संक उपाई।।

डॉ. प्रकाशचंद्र गुप्त के अनुसार, "सामाजिक शोषण अनाचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में आज भी कबीर का काव्य एक तीखा अस्त्र है। कबीर से हम रुढ़िगत सामन्ती दुराचार और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध डटकर लड़ना सीखते हैं और यह भी सीखते हैं कि विद्रोही कवि किस प्रकार अंत तक शोषण के गढ़ के सामने अपना मस्तक उंचा रखता है।" कबीर ने जन-जीवन के कटु अनुभवों के आधार पर सामाजिक मनुष्य की मुक्ति के लिए ही कार्य किया - मुक्ति सिर्फ परलौकिक या मानव-समाज के कल्याण के लिए कबीर ने जीवन के किसी भी क्षेत्र को अछूता नहीं छोडा। जैसे -

"भाव भाव में सिद्धि है, भाव भाव में मेवा

जो मानो तो देव है, नहिं तो भीत का लेव।।"

संक्षेप में कहा जाय तो कबीर का युग आज के समय जैसा ही आर्थिक वैषम्यों से भी पीड़ित था। आम आदमी की स्थिति तो और अधिक दयनीय थी। आज के समान ही उसके श्रम का समूचा फल सामन्त-सम्भ्रान्त वर्ग ही खा रहा था। तब एक दायित्व को निबाहते हुए कबीर कहते हैं -

"साई इतना दी जिए जा मैं कुटुम समाय।

मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाय।।"

इस तरह कबीर ने सामाजिकता हो ही आश्रय दिया। जिस तरह गांधीजी ने 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धांत का प्रतिपादन किया असल में उसकी प्रेरणा मूल उस कबीर की आर्थिक चेतनाएँ एवं समाजवादी चेतना का समन्वित रूप ही कह सकते हैं।

इन सारे विश्लेषण से कबीर का काव्य आज भी प्रासंगिक है यही सिद्ध होता है

कबीर के निर्गुण-राम का स्वरूप

कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। निर्गुण में नाम महिमा का महत्व होता है। इसलिए उन्होंने घट-घट में समाने वाले राम को माना है, अर्थात् उनके राम निर्गुण-निराकार है वे दशरथ के पुत्र राम नहीं है।

"दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना। रामनाम को मरम है आना आज भक्ति-भावना में प्रायः शास्त्रोक्त सभी मान्यताओं का समावेश मिल जाता है। कबीर ने यह भी माना है कि भक्ति की प्राप्ति गुरु कृपा और सत्संग से ही संभव हुआ करती है। इसीलिए उन्होंने अपनी सथियों में गुरु और सत्संग की महिमा का गाय बार-बार किया है। कुसंग से दूर रहने की प्रेरणा भी दी है।

"कबीर चंदन के बिडै-बेधैढाक-पलास'।

'आपु सरीखे करि लिए, जो होते उन पास"

भक्ति-मार्ग पर चलने वाले भक्तों के लिए कबीर ने काम, क्रोध, लोभ, मोह-मद जैसे मनोविकारों से दूर रहने की प्रेरणा दी है। इनसे दूर रहकर राम-नाम के स्मरण-भाव को ही मुक्ति का मार्ग बताया है -

"जो पै रसनां रामु न कहिबौ।

तौ उपजत बिनसत भरमत रहिबै।।

कबीर के राम निर्गुण निराकार है, उनकी मान्यता है कि निर्गुण राम केवल तर्क और बुद्धि से प्राप्त नहीं हो सकते उनके राम की प्राप्ति के लिए जप, तप, वैद-पुराण स्मृतियाँ आवश्यकता नहीं है - राम की प्राप्ति के लिए तो केवल

भक्ति भाव ही काफी है।

'बेद कतेब पढ़े का किया, गुन स्वर चंदन जस भाव
राम नाम की गति नहीं जानी, कैसे उतरिस पाव

कबीर के राम कोई अवतारी पुरुष नहीं है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है - "कबीर दास के निर्गुण ब्रह्म में गुण व अर्थ सत्व, राज, आदि गुण है, इसलिए निर्गुण ब्रह्म अर्थ वे निराकार निस्सीम आदि समझते है। उन्होंने निर्गुण के लिए शून्य शब्द का प्रयोग कबीर दास जी के निर्गुण ब्रह्म के बारे में आगे वे कहते है वह किसी भी दार्शनिक वाद दंड से परे हैं, तार्किक बाब से उपर है, पुस्तकीय विद्या से अगम्य प्रेम से प्राप्त है अनुभूति का विषय है, सहज भाव से भक्ति है।"

"सुन्न सहज मन सुमिरत, प्रगट भई एक जोति
ताहि पुरुष की मैं बलिहारी निरालंब जो होति।।

कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे, और निर्गुण ब्रह्म निर्गुण राम की प्रतिति ज्ञान के द्वारा ही संभव है। उन्होंने सगुणवाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा को त्याज्य माना और केवल निर्गुण ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार किया। कबीर के अनुसार ज्ञान के द्वारा ही भ्रम, अंधविश्वास, निरर्थ कर्मकांड को मनुष्य दूर कर सकता है। मोह, तृष्णा, स्वार्थ सभी प्रकार के मन के किल्मिष को दूर करने के लिए ज्ञान आवश्यक है। "संतो भाई, आई ज्ञान की आँधी रे।" कबीर सृष्टि को ब्रह्म की लीली मानते हैं अतः उनके राम की लीला व्यापक है। उनकी अपने राम के प्रति दास्य, दैन्य, सख्य, रति, वात्सल्य सभी भावों की अर्चना करते चाहे जिस भाव से उनके राम उन पर प्रसन्न हो जाए। इस तरह कबीर के राम का निर्गुण स्वरूप है, जिसे ज्ञान की चक्षु से ही देखा जा सकता है।

अध्याय 3 - गोस्वामी तुलसीदास

विनय पत्रिका का हेतू

तुलसीदास जी ने यह पत्रिका कठोर कलियुग द्वारा सत्ता जाने पर महाराज श्री राम जी के राज दरबार में पहुँचाई थी। उस समय वे सारी मानवजाति के प्रतिनिधि बने थे। विनय-पत्रिका में अगर सरासरी निगाह से देखा जाए तो एक बात निश्चित रूप से उभरकर आती है कि चारों ओर होने वाली आपदाओं तथा समस्याओं से सभी लोग त्रस्त हुए हैं। सभी दुखी एवं संतप्त है। तुलसीदास जी ने पत्रिका को इस तरह प्रस्तुत किया है कि कठोर से कठोर ह्दय क्यों न हो उसे पढ़कर कुछ तो दर्द जरूर होगा।

साहित्य निर्माण के पीछे अक्सर कुछ न कुछ हेतू तो होता ही है। इस ग्रंथ के नाम में ही तुलसी दास जी ने हेतू को स्पष्ट किया है। यह विनय से ओत-प्रोत पत्रिका है जिसे राजा के सामने प्रस्तुत करना है। राजा राम के सामने प्रत्यक्ष रूप से न पहुँचने के कारण यह चिट्ठी था पत्रिका लिखी गई है। अब इन सारे दुःखों के पीछे कलिदेव का हाथ है। जब कलि के मारे गोसाई जी का नाकों दम आ गया, तब उन्होंने राजा राम के दरबार यह पत्रिका भेजी।

तुलसीदास जी ने पत्रिका लिखने का दूसरा हेतु यह भी है कि वे अपने आप को अनाथ समझते है। इसलिए वे अपने नाथ याने राजा राम के सामने दुखडा रोते हैं क्योंकि वे सारे जगत के नाथ हैं। जैसे -

प्रन, करि हौं हठि आजु ते राम-द्वार परयो हौं।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठि हौं न जन्म भरि प्रभु की सौ करि निवरयो हौं।
दै दै धक्का जमघट थके, टारे न टर्‌यो हौं।
उदर दुसह साँसति सहि बहु बार जनमि जग
नरक निदरि निकरयों हौं।
हौं मचला लै छाँडि हौं जेहि लागि अरयो हो।

आगे तुलसीदास जी अपनी हीन अवस्था को भी दोषी मानते हैं। उन्होंने अपने जीवन में राम नाम का महत्व बहुत दे बाद जाना है। इसी आत्म-ग्लानी से वे कहते हैं - "ग्लानि ही गरन की पूर्ति करत"

मानस मलान, करतब कलिमाल पीन
जीह हू न जाप्यो नाम, बक्यो आऊ-बाउ मैं
कुपथ कुचाल चल्यौं-भयो न भूलिहूँ भलो
बाल दसाहूँ न खेल्यो खेलत सुदाउँ मैं।।

कलिदेव से त्रस्त होकर तुलसीदास जी भगवान राम के चरणों की शरण में गये। परंतु वे इस पार्थिव शरीर को लेकर उनके दरबार में नहीं पहुँच सकते थे, इसलिए उन्होंने पत्रिका द्वारा अपनी विपदा पहुँचायी। लिखते समय तुलसीदास जी इतने भावुक होकर रो पड़े और अपनी रक्षा के लिए भगवान के पास दुहाई करने लगे जैसे -

पाहि पाहि राम ! पाहि-रामचंद्र रामचंद्र।
सुजस स्त्रवन सुनि आयौ ही सरन।।
दीन बंधु ! दीनता दरिद्र-दाह-दोष दुख
दारून-दुसह-दर-दरप-हरन

उपर्युक्त काव्य में दुःख की असध्य वेदना प्रस्तुत हुई है। जिस तरह छोटा बालक किसी डरावनी वस्तु को देखकर रक्षा के हेतु चिल्लाने लगता है, उसी तरह कलि को देखकर तुलसी जी की भी यही अवस्था हो गई है।

एक प्रसिद्‌ध किवदन्ती विनय-पत्रिका के हेतु संबंधी है कि एक मनुष्य बड़ा दीनतापूर्ण स्वर से चिल्ला रहा था - राम

के नाम पर कोई मेरे हाथ से भोजन खा कर मुझे हत्या से छुडा दे। उसे गोहत्या का पाप लगा था। जैसे ही तुलसीदास जी ने उसकी करुण आवाज सुनी और उसके साथ प्रेमपूर्वक भोजन किया। उनके इस व्यवहार से बाकी के पंडित गुस्सा हो गये। तुलसीदास जी के तर्क से कि राम नाम लेते ही वह आदमी गोहत्या से मुक्त हो गया इस बात से ही वे नाराज हुए और उन्होंने तुलसीदास जी के सामने उन्होंने एक शर्त रख दी कि विश्वनाथ जी के नंदी ने उसके हाथ से खिलाया हुआ स्वीकार कर लिया। उसकी इच्छा के अनुसार नंदी को खिलाया गया। पत्थर के नंदी ने सबसे सामने उसके हाथ से खा लिया। राम-नाम का यह प्रभाव देखकर सब चिकित हो गये। इस घटना से सब के मन पर ऐसा प्रभा पड़ा कि सभी भगवंत भक्ति में लीन हो गए। कलि यह सब देखकर गुस्सा हो गये और उन्होंने सभी को प्रताडित करना शुरु कर दिया। तुलसी दास जी श्री हनुमान जी की शरण में गये। कलिदेव से छुटकारा पाने में श्रीराम के अलावा कोई ओर चारा नहीं था। हनुमान जी के कहने पर ही तुलसीदास जी ने विनय-पत्रिका लिखी।

उस वक्त सामाजिक अवस्था अत्यंत दयनीय हो गई थी। तुलसी जी ने इस दशा का वर्णन इस तरह किया है -

“राज समाज कृराज कोटि कट कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति-प्रीति परिमित पति हेतुवाद हठि हरिहई है।।
आश्रम वरन धरम् विरहित जगलोक वेद मरजाद हुई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप रत अपने अपने रंग रई है।।
सांति सत्य सुत्र रीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति खल बिलसत हुलसति खलई है।।
परमारथ स्वारथ साधन भये अकल सकल, नहिं सिद्धिसई है
कामधेनु धरनी, कलि गोमर बिबस बिकल जमाति न बई है”

इस प्रकार विलास प्रियता का संपूर्ण अधिकार लोगों पर छा गया था। कदाचित इन्हीं सब दशाओं को तुलसी जी ने कवितावली में भी लिखा है कि -

वेद धर्म हरि गए भृमिचोर भृप भए।
साधु सोद्यमान जानि रीति पाप पीन की।।

इसी वजह से विनय-पत्रिका में भी तुलसी जी ‘पाहि-पाहि’ कहते है। सर्वजन की दरिद्रता, असाहयता दुख दर्द सभी को तुलसी जी ने ‘कलि विलोकि हर हस्यो हौ’ व्यक्त किया है। पं. रामचंद्र शुक्ल जी के अनुसार, “शुद्ध आत्मपक्ष स्वीकार करते हुए भी साधकों के लिए ज्ञान द्वारा उस दुःख की निवृत्ति मानते हुए भी, वे लोक कल्याण के पूरे प्रयासी थे तुलसीदास जी संसार के दुःखों से घबराकर अवश्य गए लेकिन उन्हें इस बात का विश्वास है श्री राम की कृपा सब शुभ होगा।

कुल मिलाकर विनय-पत्रिका का हेतु है - शीलसि भक्त वत्सल भगवान की दुख निवारक सहायता की मांग कर, सर्वजन को दुखों, पीड़ाओं तथा यातनाओं से छुटकर पाने के लिए कि गई विनम्र याचना का ही दूसरा रूप विनय-पत्रिका है।

विनय पत्रिका की विशेषता

विनय-पत्रिका का हेतु अब हम जान चुके है। तुलसीदास जी ने जिस करुणा और सहृदयता से सभी के दुःखों के लिए प्रार्थना की है, उसमें ढेरो विशेषता भी है। इन्हीं को हम एक-एक करके देखेंगे।

1. **जागरुकता -** तुलसीदास जी को इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि विनय-पत्रिका को भगवान के घर कैसे भेजा जाये। उन्होंने बहुत सोच समझकर इसे भेजने का प्रबंध किया पहले तो उन्होंने बारी-बारी से हर एक देवता की स्तुति और उनसे

राम भक्ति की याचना की है। उसके बाद उन्होंने उनकी स्तुति की है जो 'राम' के दरबारी हैं। और सीतामाता से अपनी दीनता का वर्णन करते हुए उनसे प्रार्थना की है कि वे अपने पति से उनकी सिफारिश कर दें। इस प्रार्थना के द्वारा तुलसीदास जी अपनी लोकरीति संबंधी ज्ञान का परिचय देते हैं। वे जानते हैं कि पिता को प्रसन्न करने के लिए पहले माता को प्रसन्न करना चाहिए।

2. **क्रम -** विनय पत्रिका में 'क्रम' का अनन्य साधारण महत्व है। उसे तुलसीदास जी ने इतने खूबी से पिरोया है कि राम जी के दरबार में पहुँचते ही सबकी 'हां' उन्हें मिलती रहे। पहले उन्होंने श्री गणेश जी की वंदना की है, फिर भगवान भास्कर की स्तुति की है। तीसरी प्रार्थना सर्व शक्तिमान शिवजी से की गई है यह है कलि को डराने धमकाने तथा उसकी शक्ति को क्षीण करने का क्षीणमात्र प्रयास। उसके बाद पार्वती, गंगा, यमुना, काश तथा चित्रकूट का यश वर्णन किया है। इसके बाद केशरी नंदन श्री हनुमान, की वंदना आरंभ है।

3. **पदों का वर्गीकरण -** विनय पत्रिका में 6 प्रकार के पद पाये जाते हैं। जो अपनी-अपनी जगह अत्यंत महत्वपूर्ण बने हैं। इन सारे पदों में तुलसीदास जी के मनोवृत्ति का विश निरूपण भी प्रस्तुत हुआ है। उपरोक्त हमने देखा कि कवि की स्तुति श्री गणेश से आरंभ होती है और अनेकानेक देवी-देवताओं के चरणों से होती हुई अंत में श्री रामचंद्र तक पहुंचती है। अगर हम स्तुति पर दृष्टि डाले तो स्तुति के प्रत्येक पद में तीन अवस्थाएँ हैं। पहली गुण वर्णन जो कथाओं और रूपकों द्वारा होता है। दूसरी अवस्था रूप वर्णन जो अलंकार द्वारा होता है और तीसरी राम-भक्ति की वर-याचना जो कि अंतिम पंक्तियों में होती है।

4. दूसरे पद में सूर्य-स्तुति में हरि-संकर-बिधि-मूरति स्वामी कहकर राम-भक्ति मांगी है।

इसी तरह तीसरी पद में शिव-स्तुति में शिव को परमोच्च दानी कहकर संबोधित किया है। शिव-स्तुति के अंतर्गत अंतिम चार पद, "भैरव रूप शिव स्तुति है। चौथे पद में 'देवी-स्तुति' है। पांचवी गंगा-स्तुति पद इसमें तुलसी जी ने चार पद रचे हैं। गंगा से तुलसी जी ने राम भक्ति की याचना की है। छटा पद है 'यमुना-स्तुति' सातवां 'काशी-स्तुति' का है। इसमें कलियुग में काशीरूपी कामधेनु की सेवा प्रेमपूर्वक जीवन के अंत तक करनी चाहिए। आठवाँ पद है 'चित्रकूट-स्तूति' अर्थात् चित्रकूट सब चिंताओं से मुक्ति देने वाला है, वह कलि का नाश करने वाला कल्याणकारी हरा वृक्ष है। नवां पद है 'हनुमत्-स्तुति' इस पद में हनुमान जी की प्रार्थना बारह पदों में की गयी है।

5. **स्थान परिचय -** 'विनय-पत्रिका' में तुलसीदास जी ने केवल दो महत्वपूर्ण स्थानों का ही उल्लेख किया है। प्रथम चित्रकूट और द्वितीय काशी। वे कहते हैं - तुलसी बसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चाहे सुपासी। इस तरह गोस्वामी जी ने इस बात को भी पुष्टि दी है कि वे इन दो स्थानों में अपने वृद्ध जीवन का अधिकांश समय यहीं पर बीता दिया था। इस तरह विनय-पत्रिका में अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं।

भक्ति पद्धती

विजय-पत्रिका भक्ति की सांगोपांग पद्धती दिखाई देती है। तुलसीदास जी की भक्ति में सात्विक भक्ति प्रस्तुत हुई है। उनकी अटूट निष्ठा तथा राम जी के प्रति आत्मसमर्पण का भाव उनकी भक्ति की गरिमा बढ़ाता है। जैसे ..

'जागत सोवत सरन तुम्हारी।...

तुम्हाहिं छांड़िगति दूसर नाही। राम बसहु तिन्हके मन माँह तुलसीदास जी 'पाहन-पूजन' में भी विश्वास रखते हैं जैसे-

अपने एयन निज हथा, तिय पूजहिं निज भांति।
फलै सकल मन-कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति।।

इस तरह मूर्तिपूजा का आरंभ, अनुकरण तथा प्रतिफल बतलाते हुए तुलसीदास जी ने मूर्ति का प्रलाभ भक्त की अनुभूति से बाँध दिया है। विशेष रूप से विनय-पत्रिका में भक्ति के अनेक भेद मिलते हैं।

1. दास्यभक्ति - तुलसीदास जी शुरु से लेकर अंत तक दास्य भक्ति करते दिखाई देते हैं -

“नाता नेह नाथ सों करि सब नातो नेह कहै हौं।

यह छर भार ताहि तुलसी जगजाको दास कहै हौं।।

सेवक-सेव्य भाव जो विनय-पत्रिका में पूरी तरह से छाया हुआ है उसी को लेकर तुलसी जी बार-बार अपने श्रीराम को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उन्हें, उनके चरणों में, पूर्ण आसक्ति है। इसलिए वे अपने शरीर को सदा पवित्र तथा स्वच्छ रखते हैं, हृदय में सदा उनके प्राण प्रबल इच्छा निवास करती है और वही इच्छा उनके मुख से सदा निकलती है कि मैं सीतापति का सेवक ही हूँ -

तन सुचि, मन रुचि, मुख कहौं जन हौं सियपी को।”

तथा अपनी भावना को सविस्तर प्रस्तुत करते वें कहते हैं कि -

‘सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिय डरगारि।

भाजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत विचारि।।

तुलसीदास जी की दास भक्ति अपने आप में एक पूर्ण रूप धारण करती है जहां भक्त की स्वलघुता एवं आलंबन की महत्ता की पूर्णानुभूति है। जैसे -

1. राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो।

राम सो खरो है कौन मोरो कौन खोटो।।

2. कह्यो न परत, कहे रघ्यो न परत।

बड़ो सुख कहत बडे सो बलि दीनता।।

प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी

प्रभु की पुनीतता आपनी पाप-पीनता।।

दास भक्ति में भक्त अपने आराध्य में लीन होना चाहता है और अंत में उसी में विलीन होना चाहता है। जैसे -

गरैगी जौह जो कहौ और को हौ।

जानकी जीवन! जनम-जनम जग ज्यायो तिहारे हिकौर को हौ।

कहने का तात्पर्य यह है कि अगर उसकी जिव्हा ने किसी और का नाम लिया तो वह तुरंत ही गल जायेगी। इस अनूठी निष्ठा की वजह से ही तुलसीदास जी की भक्ति परमोच्च बिंदू पर पहुंच पायी है।

विनय-पत्रिका में तुलसीदास जी की भक्ति नवधा-भक्ति है। इसमें अनेक जगहों पर तुलसीदास जी ने संतों के सत्संग का प्रभाव बहुत ही विशद तथा प्रशस्त रूप से वर्णित किया है। इससे आगे वे कहते हैं कि केवल इसी जन्म में सत्संग की कामना नहीं करते हैं, वे तो ‘राम’ से यह प्रार्थना करते हैं कि उनका जन्म कहीं भी हो, बारंबार उनकी भक्ति और संतों का संग प्राप्त हो। जैसे -

यत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्म बस भ्रमत जग जोनि संकट अनेकम्।

तत्र त्वद्भक्ति सज्जन समागम सदा भवतु मे राम, विस्त्रोममेकम्।

भक्त के लिए उसके आराध्य देव का नाम ही सर्वशक्तिमान होता है। उसे केवल नाम में ही वह आधार मिल जाता है जिसके सहारे पूर्ण विश्वास के साथ मोक्ष के मार्ग पर अग्रेसर होता है। यदि पापी से पापी मनुष्य स्नेह पूर्वक राम-नाम का उच्चारण करने लगे, तो निश्चित रूप से उसे उसके सारे पाप कर्मों से मुक्ति मिल जायेगी।

सदा राम जपु राम जपु राम जपु राम जपु राम जपु मूझ मन बारं बार सकल सौभाग्य सुख खानि जिय जानि सठ, मानि विश्वास बद बेदस।

तुलसीदास जी कहते हैं कि जब तक राम नाम का भजन नहीं किया जाता, संसार के भौतिक, दैहिक तथा दैविक रोगों से मुक्ति मिल ही नहीं सकती और इसलिए वे हाथ उठा-उठा कर यह घोषणा करते हैं कि राम-नाम ही सभी के लिए

लाभ देने वाला है। वे इस बात को मानते हैं कि राम-नाम में छपी हुई शक्ति का असर 'कलिकाल' में मनुष्य के लिए नौका के समान सहायक होगी। जिसके सहारे वे इस संसार रूपी सागर को आराम से पार कर सकते हैं। कलि की क्रूरता राम नाम के आगे झुक जाती है। जैसे -

राम जपु राम जपु राम जपु बाबरे।
घोर-भव-नीर-निधि नाम निज नावरे।।
एक ही साधन सब रिद्धि सिद्धि साधिरे।
ग्रसे कलि-रोग संजम समाधि रे।।

तुलसी दास जी राम के नाम को ही अपना माता-पिता सेग-संबंधी, गुरु, मित्र मानते हैं।

राम, रावरो नाम मेरो मातु-पितु है।
सुजन, स्नेही, गुरु, साहिब, सखा सुहृदय।
राम-नाम-प्रेम-पन अविचल बितु है।।

इस तरह तुलसीदास जी की विनय-पत्रिका में नवधभक्ति प्रस्तुत हुई है। जो निःसंकोच अपने आराध्य का प्रेम पाने में सफल हुई है।

रसयोजना और भावात्मकता

विनय पत्रिका में अलंकारों, भावों और रसों का प्रचुर मात्रा में उपलब्धी है। ऐसे तो प्रत्येक पद में कोई न कोई अलग रस दिखाई देता है। इसमें भक्ति के भाव की उत्कट भावना... निलय है। भक्तिरस की धारा निरंतर आदि से अंत तक बहती है। हम पहले ही यह देख चुके हां कि तुलसीदास जी ने कलिदेव से भयभीत होकर जनमानस के दुःख-को दूर करने हेतु यह विनय-पत्रिका राम जी के दरबार में प्रस्तुत की है। अतः चारों और फैले दुःखों ने मन में नैराश्य भावना भर जाती है, जो शांत रस स्थायी निर्वेद अत्यंत मुखर है जैसे -

मन पछितै है अवसर बीते
दुरलभ वेह पाइ हरिपद भंजु, करम बचन अस ही ते
सहस बाहु दस बदन आदि मृप बचे न काल बली ते।।
हम हम करि धन धान संवारे, अंत बले उठ रीते।
सुत-बनितादि जानि स्थारथ-रत, न करु नेह सहबीते
अंतहु तोहिं ताजैगे पामर। तू न तजै अबही ते।।

अब नाहाहिं अनुराग, जागु जड, त्यागु दुरासा जी ते अब बुझे न काम अगिनि तुलसी कहुं विशय भोग इस पद का मुख्य स्वर 'ईश्वर रति' स्थायी भाव से पुष्ट 'भक्ति रस' ही है। निर्वेद तो 'ईश्वर भक्ति का पोषक होकर ही उपस्थापित हुआ है।

इस तरह से विनयपत्रिका में भक्त कवि तुलसीदास जी की भक्ति-भावना का निर्झर है, ऐसा कहने में जरा भी दुःसाहस नहीं होगा। विनय-पत्रिका में कवि की हृदय चेतना और भावना के उन स्पंदनों का अभिव्यंजन और मूर्तीकरण हुआ है, जिनमें लौकिक भूमिका का संस्पर्श भी नहीं है। अंतः विनय-पत्रिका की भूमिका सर्वथा अलौकिक होने के कारण उसमें प्राप्त रस का भी रूप अत्युच्च घरातल पर प्रतिष्ठित हुआ है। विनय-पत्रिका में प्रेम अथवा स्थायीभाव की निष्पत्ति इसी भक्ति रस में निहित हुई है।

रस का महत्व प्रतिपादित करते हुए विद्वानों के मतानुसार रस और आनंद दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। आनंद और रस का सर्वोत्तम निर्मल रूप भक्ति को ही माना जाता है। विनय पत्रिका में भक्ति रस का स्वरूप भक्त के हृदय के दैन्य भाव तथा वैयक्तिक लघुता और हीन भावना से ग्रस्त है जिस पर प्रभु की कृपा की याचना का अविर्भाव

व्यक्त है। इस तरह से विनय पत्रिका में भक्तिरस एवं भावात्मकता का सुंदर संयोग बन पड़ा है। दैन्य भाव की चरम परिणति रस के स्तर पर शुद्ध सत्वमयी बनी है। तुलसी की भक्ति रस का स्वरूप प्रत्येक पंक्तियों में, प्रसंगों में और आयामों में संयमित है इसीलिए उसमें भावोन्मेष का भी संतुलित रूप प्राप्त हुआ है।

भाषा, कवित्व एवं गीतात्मकता

भाषा, कवित्व, और गीतात्मकता तुलसीदास जी अपने समय के समाज को प्रतिनिधी माने जाते हैं। उन्होंने दीर्घ काल तक भ्रमण करके सामाजिक और धार्मिक अनुभव द्वारा अपने आध्यात्मिक सिद्धांतों द्वारा समन्वयवादी दृष्टिकोण रखा है, ठीक ऐसा ही समन्वय अपनी रचना में भाषा की दृष्टि से भी रखा है। देशाटन के ही वजह से तुलसीदास जी की रचनाओं में अवधी, बुंदेल खंडी, संस्कृत और ब्रज आदि विभिन्न भाषाओं के शब्दों का मोहक संम्मिश्र मिलता है।

विनय-पत्रिका के आरंभ के 61 पदों में विव्दवत्ता के पद होते हैं। इसके बाद पदों की भाषा मुहावरेदार है। इनमें कुछ अरबी फारसी के भी शब्द कुछ मिल गये हैं, किंतु वे इस तरह घुल-मिल गये है कि जरा भी खटकते नहीं। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि उस समय ये शब्द जनसाधारण की बोलचाल में प्रचलित थे और तुलसी दास जी का महान उद्देश्य जन-साधारण का हित-चिंतन था। अतः हम यह कह सकते हैं कि अपनी समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण उन शब्दों अपनाने में किसी प्रकार का छूत-छात नहीं किया है।जैसे,

कोक कोकनाद लोक-प्रकासी। तेज-प्रताप-रूप-रस-अहि भूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव-देव त्रिपुरारी।
मोह निहार-दिवाकर संकर, सरन-लोक-भय हारी।।
अतुलित बल मृगराज-मनुज-तनु दनुज हत्यो स्रुति सार भलो लोक-परलोक तासु जाके बल ललित-ललाम को।।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को।
झूठे साँचे आसरो साहब रघुराउ मैं।।
सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु।
सुमरित होत कलिमल-छल-छीनता।।

अब कुछ ऐसे पद देखते हैं जिनमें दार्शनिक सिद्धांत को बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त कर जनसाधारण के लिए सरलता पूर्वक गेय पदों में अभिव्यक्त किया है जैसे -

राम-राम रटु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
राम-नाम–नव नेह-मेह को मन! हठि होहिं पपीहा।।
राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे।
घोर - भव - नीर - निधि नाम निज नाव रे।।
राम-नाम जपु जिय सदा सानुराग रे।।
कलि न विराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे।।
जागु जागु जीवन जड़। जो है जग जामिनी।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी

तुलसीदास जी ने बोलचाल की भाषा में आध्यात्मिक सिद्धांत को इतनी सहजता से जनमानस तक पहुंचाया है। एक ही पद में बहुत सी बातों को कहना यह तुलसीदास जी की भाषा में विशेष पकड दर्शाती है।

विनय-पत्रिका की भाषा में माधुर्य ओज एवं प्रसाद गुण से युक्त है। प्रारंभिक पदों में कादंबरी की सी छटा छिटकी हुई है जैसे -

सिरसि संकुलित-कल-जटा-पिंगल जय पटल सनकोटि विद्युच्छाटार्भ"।
जयति अंजनी-गर्भ अंभोद्यि-संभूत विधु

बिबुधकुल-कैरवा नंदकारी।
केसरी चारु-लोचन-चकोरक-सुखद,
लोकगन - शोक - संताप हारी।।

कहीं कहीं संस्कृत पदावली का भी उपयोग हुआ है जैसे -

तेन तप्तं हुतं दत्तमेवारिवलं, तेन सर्व कृतं कर्मजाल।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमानिसमन वद्यमवलोवय काल।
यह पद मधुरता, मनोज्ञता, और सरलता से युक्त है

इनमें कादंबरी की भांति न शिष्टता है और निवलष्टता यह पद समास शैली में लिखा गया है।

अरबी-फारसी शब्दों का उपयोग -

लायक, फहम, गरीब, गुलाम, साहिब, निशान, जहान, बुलंद, शरम, दाद, गुल, खलक आदि।

बुंदेलखण्डी - अथाई, पनवारी, काउ, ल्यावों आदिष

उपरोक्त समासशैली में तत्सम शब्दों का प्रयोग होते हुए भी अनेक राग-रागिनियों का प्रयोग हुआ है, जिनमें संगीत की अलौकिक छटा छिटकी है। विनय-पत्रिका में राग बिलावल, धनाश्री का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत ग्रंथ भक्ति का महत्त्व प्रतिपादित करता है अतः अनेक स्रोत रूप में प्रस्तुत हुआ है।

विनय-पत्रिका में शब्दों में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का समावेश यशोचित किया है। योग्य स्थान पर वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का प्रयोग तुलसी जी ने खूब किया है। काव्य के अंग याने काव्य-भाव, छंद, अलंकार और रस का भी पूरा निर्वाह होना किसी भी काव्य के लिए आवश्यक है, और इसी आवश्यकता को तुलसीदास जी ने विनय-पत्रिका बखूबी प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपनी विनय-पत्रिका में अनुभूति और कल्पना के साथ कला-पक्ष को भी खूब संवारा है। विनय-पत्रिका में उपमा, अर्थ गौरव और पद का लालित्य पूर्ण विकास के साथ प्रस्तुत हुए हैं। इन सबसे अधिक प्रधानता भक्ति-रस की है, जिसमें तुलसी ने निष्कपट भाव से प्रस्तुत किया है। जैसे विनय-पत्रिका दीन की, बापु ! आपु ही बाँचो और "हिये हे रि तुसली लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिए पांचो।" अब तुलसी दास जी का अनुभूति का भाव भरा एक पद देखिए -

'नाम की ओट लै पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो
लाज न आवत दास कहावत।"

अथवा

"सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत"

इन सभी पदों में निर्मल भाव व्यक्त हुए हैं। अब एक उत्कि - वैचित्र्य का पद देखिए -

'तुलसीदास भव-व्याल-प्रसित तव सरन 'उरग रिपु-गामो"

आगे तुलसीदास जी इस संसार के मायाजाल रूपी सर्पो से भयभीत है, इसलिए वे भगवान से प्रार्थना कर रहे हैं जो सर्पो के शत्रु पक्षिराज गरुड़ पर चढ़कर भक्तों की पुकार पर दौड़कर आने वाले हैं। व्यंजना से अर्थ इस तरह निकलता है कि, 'यदि आपन आ सकें तो अपने वाहन ही को भेज दें, उसी से मेरा कष्ट दूर हो जाएगा।' इसी तरह के और उदाहरण देखिए -

भूषन प्रसून बहु विविध रंग। नूपुर किंकिनि कलखविहंग
कर नवल बिकुल पल्लव रसाल। श्री फुल कुट कटुकि लताजाल।।
दीनबंधु। दीनता दरिद्र दाह दोष दुख दारुन दुसहदर दरपहरन।
गल कंबल बरुना विभाति जनु लूम लसति सरिता-सी

लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करन घंट घंटा-सी।

पर-दुखी सुखी पर-सुखते, संत-सील ने हि हृदय घरौं।।

देखि आन की विपत्ति परम सुख सुनि संपति बिनु आगि से जेहि कर-कमल कछोर संभु घनु भंजि जनक संसय में उपरोक्त पदों में ओज, प्रसाद एवं माधुर्य सभी गुण प्रस्तुत हैं। विनय-पत्रिका में भावों, अलंकारों, रसों आदि का कह.. भी अभाव नहीं है। प्रचुर मात्रा में उनकी उपलब्धी हैं।

जैसे -

कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान।

उस बसि प्रपंच रच पंचबान।।

अथवा

देखो देखो, बन बन्यो आज उमाकांत।

मानो देखन तुमहिं आई रितु बसंत।।

कुल मिलाकर संक्षेप में कहा जा सकता है कि विनय-पत्रिका के पदों में विचित्र लालित्य और मनमोहक आकर्षण है। यदि उसमें कहीं भी समास की बहुलता और अलंकारों की अटूट श्रृंखला है तो कहीं कोलम कान्तपदावली की मधुरता का आप्लावन सा है। कहीं कहीं पदों में क्लिष्टता होते हुए भी भावों का लोप नहीं हुआ है। अनेक रागों और रागिनियों के अनुसार रचे गए पदों में साहित्यिक सौंदर्य के साथ ही संगीत का भी पूरा आनंद मिलता है। जैसे -

केशव, कहि न जाय का कहिये। और अब मैं तोहि जान्यो संसार तथा हे हरि यह भ्रम की अधिकाई, आदि पद जन सामान्य में अतिशय प्रिय हैं।

भक्तिकाव्य में विनयपत्रिका का स्थान

तुलसीदास जी का नाम आते ही उनकी भक्ति भावना तथा दास्य भावना उजागर होती है। तुलसीदास जी का संपूर्ण साहित्य भक्ति से ओत-प्रोत है। और उनकी विनय-पत्रिका को अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण और विशेष स्थान रखती है। सबसे पहले इसकी खास विशेषता यह है कि यह जन सामान्य के दुःखों के निवारण हेतु प्रस्तुत हुई है और इस प्रगीत तत्व को सही मायने में प्रस्तुत किया है। दूसरी ओर भाषा की दृष्टि से देखा जाये तो ब्रजभाषा का परिनिष्ठित और प्रांजल रूप में प्रस्तुत हुआ है।

विनय-पत्रिका मूलतः भक्ति का ग्रंथ है। तुलसी जी का रामचरित मानस से लेकर अन्य सभी ग्रंथों में भक्ति भाव ओत-प्रोत है। रामचरित मानस के अंतर्गत भक्ति भाव को जिस तरह प्रस्तुत किया गया है उसकी तो किसी भी साहित्य-कृति से तुलना नहीं की जा सकती। उसे तो विश्व साहित्य की अक्षय और अमूल्य निधी कह सकते हैं। विनय-पत्रिका की भक्ति-भावना का अगर हम स्वरूप पर एक दृष्टि डालें तो एक बात प्रमुख रूप से सामने आती है और वह यह है कि इसमें निहित भक्ति भावना सबसे विशिष्ट और अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि तुलसीदास जी ने इसमें भक्ति का भाव आत्मभिव्यंजक रचना के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। इसीलिए भक्तिकाव्य में विनयपत्रिका का अपना एक विशेष स्थान है। इस काव्य निहित अनेक देवताओं के प्रति स्तोत्र-परक पद भी है। इन स्तोत्रों में तुलसी जी ने स्वाभाविक रूप से मनोभावों को प्रस्तुत किया है।

विनय-पत्रिका की भक्ति-भावना तुलसी दास जी के समसामयिक कवि सूरदास की भक्ति-पद्धति से अलग भूमि पर प्रतिष्ठित हुई है। अब इन दोनों में मूलतः भिन्नता है उनके आराध्य के प्रति। तुलसीदास के राम आदर्श सम्राट हैं जो स्वतः मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। अतः उनके चरित्र में अनुशासनप्रियता और कठोर संयम की वजह से तुलसीदास जी के भक्तिपद्धति में आलंबन की इसी महत्ता के कारण सात्विक भावापन्न प्रेम के साथ दैन्य और लघुता का भाव स्वाभाविकतया समाविष्ट हो गया है। इसके विपरित सूरदास जी के इष्ट भगवान कृष्ण सर्वव्यापी स्वतंत्र और निरंकुश

हैं। अगर हम हमारे प्राचीन ग्रंथपर दृष्टि डालें तो उनके चरित्र का विकास साधारण परिवार से सम्राट तक हुआ है। अतः उनके व्यक्तित्व की उपमा महाकाश से दी जा सकती है। इसीलिए कृष्ण भक्ति के चित्र में रति के अनेक चित्र चित्रित करने में कवियों को सदा रुचि रही है इसलिए सूरदास जी ने माधुर्यपूर्ण भक्ति के मोह चित्र चित्रित कर सके। सूरदास जी के भ्रमर गीत गोपियों के विदग्ध विरह वर्णन के माध्यम से भाव तथा मार्मिक भक्ति के निरूपण में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। इसीलिए सूर की भक्ति को सौंदर्यप्रयी प्रेमाभक्ति की संज्ञा दी गई है।

लेकिन तुलसीदास जी की भक्ति भावना में द्रावण का रूप प्रस्तुत होते हुए भी उसमें वह भाव नहीं आया जो सूरदास जी की भक्तिभावना में प्राप्त होता है। तुलसी की भक्ति में भगवान की ऐश्वर्य-महिमा के कारण दास-भाव, दैन्य अधिक प्रकट हुआ है। इसीलिए उसमें प्राप्ति भक्ति का स्वरूप निरहंकार और सात्विक भाव विद्यमान है। तुलसीदास जी इस अभिमान को सदा अक्षुण्ण रखना चाहते है कि वे सचराचर जगत के जोकि भगवान का ही विराट रूप है। - सेवक बने रहें। वे भाव सागर में निमग्न होकर अपनी सत्ता को कायम बनाना चाहते हैं - सेवक बना रहना। वे भाव-सागर में निमग्न होकर अपनी सत्ता को खोना नहीं चाहते। विनय-पत्रिका में यही भक्ति का रूप प्रस्तुत हुआ है। इसमें भक्ति रस की निर्झर फूट पड़ा है। इसीलिए विनय-पत्रिका में सौंदर्य, शक्ति और शील के समन्वय से मनुष्य की संपूर्ण रागात्मिका प्रवृत्ति का परिष्कार और प्रासार होता है।

तुलसीदास जी के भक्ति भाव में ज्ञान की सभी बातें, दार्शनिक विचार सम्मलित हैं। इसी वजह से ज्ञान-योग और भक्ति योग में कहीं भी विरोध नहीं पाया जाता। जैसे - "ज्ञानहिं भक्तिहिं कछु नहिं भेदा।" इन्होंने अपने भक्तिमार्ग को राज-मार्ग की तरह सरल एवं सुगम प्रस्तुत किया है। वे राम-नाम ही को प्रशस्त पथ-पदार्थिका मानते हैं। वे राम नाम को सभी प्रकार के दुःखों के शमन का साधन मानते हैं। इन्होंने सदा पथिक राम को ही अपना आराध्य देव माना है। बार-बार लोक-मंगल की कामना की है। केसव कहि न जाय का कहिए जैसे पदों में दार्शनिक विचारों को भी प्रस्तुत किया है।

रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "भक्ति रस का पूर्ण-परिपाक जैसा विनय-पत्रिका में है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। इसमें प्रगढ़ प्रेम, आलंबन के महत्व और अपने दैन्य के अनुभव का ऐसा स्वच्छ शब्द-स्रत निकला है कि उसमें अवगाहन करने से हृदय स्वाभाविक ही निर्मल हो जाता है। अनंत शक्ति, शील और सौंदर्य पर आकृष्ट होकर भक्त ज्यों-ज्यों भगवान के महत्व का सान्निध्य प्राप्त करता है त्यों-त्यों उसके भाव महत्व की और बढ़ते जाते हैं और महत्व भी उसके निकट आगे लगता है, अंत में लघुत्व का हत्व में लय हो जाता है। महत्व की अनुभूति से ही भक्त का प्रभु के महत्व के सामने अपने दैन्य अर्थात् लघुत्त्व का अनुभव होने लगता है। यही कारण है कि वह जिस प्रकार भगवान का महत्व वर्णन करने में गद्गद होता है, उसी प्रकार उससे अपनी लघुता का वर्णन किए बिना भी नहीं रहा जाता। यह उस अनंत शक्ति का प्रभाव है कि उसके समक्ष भक्त को अपनी तुच्छता का स्पष्ट चित्र दिखाई पड़ने लगता है।"

इस तरह से कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि तुलसीदास जी की विनय-पत्रिका भक्ति-भाव का, भक्ति रस का एक अनोठा संगम है। लोक मंगल की भावना एवं जन सामान्य के दुखों से त्रस्त तुलसी जी भगवान की शरण में दुख हरने की कामना करते है। इसलिए यह एक निश्चित रूप से उच्चकोटी की कामना है। और विनय-पत्रिका इन कामनाओं से ओत-प्रोत है। इसीलिए भक्तिकाव्य में विनय-पत्रिका सर्वश्रेष्ठ है।

कबीर और तुलसी के राम

कबीर और तुलसी के राम को जानने से पहले उनकी अपनी-अपनी भक्ति-काव्य धारा के बारे में संक्षेप में जान ले। भक्तिकाव्य धारा के दो प्रमुख धाराएँ हैं जैसे कबीर की निर्गुण काव्य-धारा तो तुलसीदास जी की सगुण काव्य धारा। निर्गुण काव्य धारा में भक्ति निराकार एवं निर्विशेत के प्रति होती है, इसमें अंतः सौंदर्य का महत्व प्रतिपादित होता है। उसी तरह इसमें स्वकिया भाव होता भी निहित होता है। तथा भक्त में आत्मविश्वास की शक्ति होती है। और वह ब्रम्ह

का उपासक होता है। सगुण काव्य-धारा में भक्ति साकार एवं सविशेष के प्रति होती है। इसमें ईश्वर के बाह्य सौंदर्य का चित्रण होता है। इस भक्ति धारा में स्वकिया तथा परकीया दोनों भाव होते हैं। इसमें ईश्वर की अनुकंपा पर विश्वास होता है। तथा ईश्वर के अवतारों की उपासना की जाती है। उपरोक्त सारी बातें ध्यान में रखते हुए ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि निर्गुण और सगुण विरोधी नहीं है। जिस तरह निर्गुण भक्ति के लिए सगुण की स्वीकृति आवश्यक है उसी तरह सगुण भक्त के लिए निर्गुण की स्वीकृति आवश्यक है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार कबीर के राम दशरथ सुत नहीं है, पर वे अपने निर्गुण आराध्य की भक्ति के पदों में उसका सगुण या मूर्त पक्ष की ओर भी इंगित करते हैं। इस तरह दोनों भक्ति काव्य धारा को जानने के बाद अब हम कबीर और तुलसी के राम को जान लेते हैं।

कबीर निर्गुण भक्ति काव्य धारा के संत, उपासक थे अतः उनके आवाध्य राम भी निर्गुण निराकार है। वे दशरथ सुत नंदन है। कबीर कहते हैं कि उनके राम केवल तर्क और बुद्धि से ही प्राप्त हो सकते हैं। राम को पाने के लिए जप, तप, वेद-पुरान-स्मृति की जरुरत नहीं होती, उसकी प्राप्ति के लिए तो केवल भक्ति भाव की ही आवश्यकता है जैसे,

"किताब पढे का किया, गुनखर चंदन जस भारा।
रामनाम की गति नहीं जानी, कैसे उतरिस पारा।।"

तुलसीदास जी के राम सगुण है अतः वे सृष्टि के कण-कण में परिव्याप्त हैं, राम की उपलब्धि इतनी सहज सुलभ है जिस तरह से अन्न और जल सभी के लिए उपलब्ध है जैसे -

"निगम अगम, साहब सुगम, राम सांचिली चाह।
अंबु असन अवरोकियत सुलभ सबहि जग मोह।।"

तुलसी जी के राम दशरथ सुत के रुप में अवतारी पुरुष है, उनके अवतार के पीछे लोक मंगल का प्रयोजन है। कहते हैं जब जब अधर्म बढ़ता है तो धर्म की रक्षा के लिए पृथ्वी पर अवतारित होते हैं। जेसे

"जब जब होइ धरम कै हानि। बाढहिं असुर अधम अभिमानी।"
"जब जब प्रभु धरिविविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।"

कबीर इस पूरी सृष्टि को ब्रह्म की ही लीला मानते हैं। अतः उनके राम की लीला व्यापक है जबकि तुलसीदास जी के राम अवतार रूप में भक्तों के समक्ष लीला प्रस्तुत करते हैं। जहाँ कबीर भक्त एवं ब्रम्ह के स्वरूप में अद्वैत संबंध मानते हैं वही तुलसीदास जी इन संबंध को द्वैत मानते हैं।

कबीर दास कहते हैं -

'दसरथ सुत तिहुं लोक बखाना। रामनाम को मरम है आना' तो तुलसीदास जी मानते हैं कि "जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।"

सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसल पति भगवान।। संत कबीरदास जी की अपने आराध्य के प्रति दास्य, दैन, सख्य, रति, वात्सल्य सभी भावों की अर्चना करते हैं, फिर चाहे उस भाव से उनके राम उन पर अपनी कृपा करेंगे। लेकिन तुलसीदास जी अपने राम को, अपने आराध्य के सिर्फ दास्य भाव से ही प्रसन्न करना चाहते हैं। इस तरह कबीर के आराध्य निर्गुण राम है तो तुलसीदास जी के आराध्य सगुण राम हैं।

अध्याय चार - मीरा

मीरा की मधुरा भक्ति

मीरा ने अपने लौकिक जीवन में निरंतर अलौकिक की भक्ति की। यह अलौकिक भक्ति कृष्ण के प्रति समर्पित थी, जिसे आजीवन मीरा ने निभाया। अनेक संकट, बाधाओं से लड़ते हुए उनकी भक्ति अधिक दृढ़ होती गयी। मीरा की भक्ति साधारण नहीं थी, वह अपने आपको जन्म-जन्म की कृष्ण की दासी मानती थी। मगर उनमें दास्य भाव नहीं बल्कि मधुर भाव था जिसमें मीरा अपने आराध्य से मिलने के संयोग की प्रतिक्षा करती थी। वह भगवान के निरंतर दर्शन करना चाहती थी।

मीरा की भक्ति में नौ प्रकार मिलते है। पुराणों के अनुसार,

श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्।
वंदनं अर्चनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।।

मीरा में क्रम से नवो प्रकार की भक्ति करने का उल्लेख मिलता है और अंतिम आत्मनिवेदन के बाद प्रेमभक्ति में लीन होकर वह श्री विरधरलाल के परम ज्योति में समा जाती है, एकरस, एकरूप होती है।

मीरा की प्रेमसाधना

आम तौर पर यही समझा जाता है कि मीरा का प्रेम राधा-कृष्ण या अन्य देवी देवताओं को नायक-नायिका बनाकर जो प्रस्तुत हुआ है, उसी तरह का होगा। परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। कृष्ण की गोपियों ने भक्ति की एक निजी प्रेम पद्धति चलाई थी, जिसके आगे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि-ज्ञानियों ने हार मानी थी और उसी पद्धति को मीराबाई ने अपनाया था। इसलिए न इन्होंने किसी संप्रदाय में दीक्षीत होने का प्रयास किया और न किसी से अपने प्रेभक्ति-मार्ग के लिए प्रोत्साहन प्राप्त किया। इनकी भक्ति स्वभवतः थी जो जन्म से ही इन्हें प्राप्त थी। वह अपने को पूर्व जन्म की गोपी मानती थी और उपास्य देव श्रीकृष्ण की पतिभाव से भक्ति करती थी। यह भक्ति भाव उसी प्रकार था जिस प्रकार सूरदास ने सख्य भाव, तुलसीदास ने दास्यभा, श्री वल्लभाचार्य ने वात्सल्य भाव तथा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने प्राणेश्वर भाव से की थी।

मीरा एक अविनाशी परमेश्वर रूप श्रीकृष्ण का वरण कर सच्चे दृढ़ सत्याग्रह के साथ भक्ति करती रही। जिस तरह एक पत्नी सारे संसार का त्याग करके भी अपने पति का त्याग नहीं करती, उसी तरह मीरा ने समस्त संसार का त्याग कर श्रीकृष्ण का साथ अपनी अंतिम सांस तक दिया।

मीरा का वेदनानुभूति

विरह और मिलन वेदना और उल्लास, दुःख और सुख मानव-जीवन के दो तार हैं। अतः मीरा का सारा काव्य इन्हीं तारों से जुडा हुआ है। मीरा की वेदना जीवमात्र की वेदना है, भगवान से बिछुडे हुए और उसके प्यार में तडपते हुए जीवमात्र की अंतर्व्यथा है। मीरा कहती है,

"तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं
जैसे सूरज धामा"

मिश्री में मिठास वाली उपमा भी दी जाती है। परमात्मा को पति के रूप में अनुभव करते हुए अपने को उसके चरणों में संपूर्ण भाव से आत्म-समर्पित करने की भावना को ही 'परम-भाव' या मधुर भाव कहा गया है। जब इस मिलन में बाधा आती है, तो वह विरह एक अलग ही धरातल पर मनुष्य को ले जाता है जहाँ पर उसे अलौकिक आनंद की प्राप्ती होती है। इसलिए तो मीरा कहती है, मेरे तो गिरधर गोपाल, इसरो न कोई।'

विरह की इस ज्वाला में, वेदना का यह उद्विप्त शृंगार ही भक्तों का प्राण है, इसलिए तो समस्त संसार से बार-बार

कहती है

"हे री मै तो प्रेम दीवानी, मोरा दरद न जाणे कोय"

रस योजना

मीरा की माधुरा भक्ति थी, इसलिए उसमें शृंगार रस स्वाभाविक रूप में था। परंतु यह शृंगार रस पूर्ण रूप से भक्ति में डूबा हुए था। मीरा ने जिस प्रकार की भक्ति का अपने पदों में वर्णन किया है उसे कुछ लोग शृंगारिक कहते हैं पर यदि वे सूक्ष्म रूप से उनपर विचार करेंगे तो जान पायेंगे कि वह वर्णन तो दिखावे के लिए हैं, उसके अंदर में तो भक्ति ही भरी हुई है। उपास्यदेव के शृंगार, आरती झूलन, राधा-कृष्ण विलास आदि लीलाओं का प्रेम भाव से गायन करने की प्रथा चल पडी थी और है। उन लीलाओं के पदों का श्रवण-भजन करते-करते तथा स्वयं पद बनाकर गाते गाते मीराबाई स्वयं एक गोपी बन गई और उसी तरह श्रीकृष्ण के मिलन की आशा तथा न मिलने के विरह में विरहाकुला गोपियों के समान जीवन भर कातर बनीं रही।

मीरा के काव्य में प्रायः करूणा रस प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। मीरा निरंतर कहती चली आई हैं कि 'मेरा दर्द न जाने कोई'। यही दर्द, यह करूणा श्रीकृष्ण के विरह में ही उपजी है, पनपी है और यही मीरा का जीवन बनी रही।

रस ही आनंद है, रस ही प्रेम है और यही भगवान के स्वरूप का एक अंश है, जिसे चिन्मय कहा गया है। मीरा की भक्ति रस से परिपूर्ण है, उनके काव्य में प्रस्तुत रसस्फूर्ति एक अलौकिक त्रपुटीभोक्ता, भोग्य तथा भोग में पृथकता का आभास वहीं रहने देती। यही उनके काव्य की विशेषता भी है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मीरा के काव्य में करुणा शृंगार, शांति रस के साथ ब्रह्मानंद रस भी है।

अध्याय - 5 रीति काव्यधारा : संपादक - डॉ. रामचंद्र तिवारी (बिहारी)

रीतिसिद्ध कवि बिहारी

परिचय - बिहारी का जन्म ग्वालियर के समीप वसुधा गोविंदपुर में हुआ था। कुछ लोगों के अनुसार आचार्य केशवदास ने बिहारी को काव्य-शिक्षा दी थी। बिहारी का संपर्क बादशाह शाहजहाँ तथा, जोधपुर और बूँदी के राजाओं से भी था। लेकिन अंत में जयपुर के महाराज जयसिंह के आश्रय में ही उन्होंने अपनी प्रसिद्ध रचना 'सतसई' की प्रस्तुती की।

हुकुम पाइ जयसाहि को, हरि राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद्।।

बिहारीलाल रीति-काल के प्रतिनिधि कवि है। उनकी सतसई रीति कालीन काव्य-प्रवृत्तियों का सफल प्रतिनिधित्व करती है। वे न तो पूर्णतः रीतिबद्ध है न रीतिमुक्त। उनकी सतसई में नखशिख 'नायिका-भेद' शृंगार-रस षट्ऋतु 'अलंकार' आदि सभी विषयों का वर्णन मिलता है। ये सभी विषय रीति की बंधी परिपाटी के अनुकूल है। इसीलिए उन्हें, घनआनंद, बोधा, ठाकुर आदि जो रीतिमुक्त काव्यधारा कवि हैं उनके साथ नहीं रखा जा सकता। पंडित पद्मसिंह शर्मा के अनुसार, "शृंगार रस-वर्णन पद-विन्यास-चातुर्य, अर्थ-गांभीर्य, स्वाभावोक्ति और स्वाभाविक बोल-चाल आदि खास गुणों में वह अपना जोड नहीं रखते।"आचार्य शुक्ल जी ने बिहारी को रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में ही स्थान दिया है। उनके अनुसार, "बिहारी ने यद्यपि लक्षण-ग्रंथ के रूप में अपनी सतसई नहीं लिखी है, पर 'नखशिख' 'नायिका-भेद' 'षटऋतु' के अंतर्गत उनके सब शृंगारी दोहे आ जाते है। दोहों की रचना करते समय बिहारी का ध्यान लक्षणों पर अवश्य था। इसीलिए हमने बिहारी को रीतिकाल के फुटकल कवियों में न रख कर उक्त काल के प्रतिनिधि कवियों में ही रखा है।"

उपर्युक्त सभी के मतानुसार यह बात प्रमाणित हो जाती है कि बिहारी रीतिकाव्य के प्रतिनिधि कवि है।

रीतिसिद्ध कवियों की तीन प्रमुख रूप से विशेषताएँ होती है जैसे - 1. शास्त्रस्थिति-संपादन-मात्र इनका लक्ष्य नहीं था। 2. इनकी कविता में इनकी स्वतंत्र सत्ता या इनके वैशिष्ट्य का लोप नहीं हुआ। 3. इनके कला-पक्ष और भावपक्ष दोनों का समान उत्कर्ष हुआ।

भक्तिकाल के उपरांत रीतिकाल के आते ही शृंगार मुक्तकों का प्राधान्य हो गया। रीतिकालीन शृंगार रस के मुक्तक-ग्रंथों में बिहारी-सतसई सबसे अधिक लोकप्रिय है। इन 700 दोहों के आधार पर जितनी ख्याति बिहारी को हुई है उतनी अन्य किसी कवि को नहीं हुई है। बिहारी-सतसई की हिंदी-संस्कृत फारसी, उर्दू, गुजराथी भाषाओं में टीकाएँ लिखि गई हैं।

बिहारी को जितनी शृंगार रस में महार हासिल हुई थी, उतनी बेनी, मतिराम, देव, रसवीन कवियों को भी नहीं हासिल हुई। इसका प्रमुख कारण यह है कि काव्य-रीति का पूर्णतया पालन करते हुए मानव-प्रकृति के कोमल मनोभावों का वर्णन जितनी कुशलता एवं रसात्मकता के साथ बिहारी ने किया उतना अन्य कोई भी कवि नहीं कर सका।

बिहारी की काव्य-प्रतिभा अन्यतम है। सतसइयाँ बहुत-सी लिखी गयी। शृंगार-रस-पूर्ण मुक्त काव्य भी कम नहीं लिखा गया, किंतु जो ख्याति बिहारी को प्राप्त हुई, जितनी टीकाएँ बिहारी-सतसई पर लिखी गयी जितनी आलोचनात्मक सूक्तियों का प्रचार बिहारी के संबंध में हुआ उतना रीतिकाल किसी अन्य कवि के विषय में नहीं हुआ।

बिहारी की तुलना के लिए प्रायः देव का नाम लिया जाता है। परंतु देव ने मानव-स्वभाव के रहस्यों का चित्रण करने के लिए सवैया जैसे चार पंक्तियों को ही अपनाया है, और बिहारी ने वही कार्य छोटे दोहे ने किया है। "देखन में छोटे लगत है, घांव करे गंभीर" वह बात उनके काव्य में प्रायः पायी जाती है।

डॉ. नगेंद्र के अनुसार, "बिहारी में सौंदर्य के सूक्ष्म तत्व को ग्रहण कर शब्द-बद्ध करने जैसी अपूर्व क्षमता है, वैसी

देव अथवा रीति-युग के किसी भी कवि में नहीं है।" इसलिए सूर और तुलसी के उपारांत हिंदी काव्य के क्षेत्र में सर्वाधिक मान-सम्मान बिहारी को प्राप्त हुआ।

सौंदर्य चित्रण

रीति काल में शृंगार रस अपने चरम-स्थिति में था। अतः काव्य में इस रस का प्रस्तुतीकरण प्रचुर मात्रा में हुआ। सौंदर्य वर्णन में यह रस बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ। बिहारी ने कामलता और मधुरता की प्रतीक नारी का नख-शिख वर्णन किया है। बिहारी ने नायिकाओं का वर्गीकरण नहीं किया है, किंतु सभी प्रकार की नायिकाओं के सौंदर्य संबंधी विधायक सहज गउण होते हैं, उनका चित्रण करते हुए बिहारी ने नव-यौवना परकीया नायिका के अंग-अंग में उमड़नेवाली सौंदर्य की लपट का बड़ी ही मनमोहक वर्णन किया है, जिसके परिणामस्वरूप वह सुंदरी पतले शरीर वाली होने पर भी गदकारी लग रही है,

"अंग-अंग छवि की लपट उरटति जाति अछेह।
खरी पातरीऊ, तऊ लगै भरी सो देह।।

कहते हैं प्रणय-मूलक शृंगार के क्षेत्र में रूप-पर्व की आयोजना मूलतः इस उद्देश्य से की जाती है कि दो प्राणियों का पारस्पारिक आकर्षण घनीभूत एवं तीव्रतर हो जाये। यद्यपि बिहारी के रूप-चित्रों में कामुकता की गंध प्रायः गहरी-सी लगने लगती है, तो भी ऐसे कितने ही स्थान है जहाँ पर रूप-आभा की नितांत स्फूर्तिवर्धक व्यंजना हुई है। वास्तव में बिहारी के दोहों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि उन्होंने रूप-रंग का भली-भाँति निरीक्षण किया था। एकाध प्रसंगों के अतिरिक्त बिहारी ने सांवलियों का जैसे तिरस्कार ही किया है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि संस्कृत काव्य में स्त्री-शरीर का वर्णन साधारणतः श्यामल रूप में नहीं मिलता। लोक में भी नारियों की गुराई की ही अभ्यर्थना की जाती है। पुरूष श्यामल हो सकते हैं किंतु नार-जिसके संसर्ग से समग्र जीवन और जगत् ही रूपवान आलोकमान बन जाते हैं का गौर-वर्ण होना भारतीय सौंदर्य-दृष्टि आवश्यक मानती है। बिहारी ने भी इसी सौंदर्य परंपरा का पालन किया है। श्वेत - वर्णा नायिका का वर्णन देखिए।

"कहा कुसुम, कह कौमुदी, कितक आरसी-जोति।
जाकी उजराई लखै, आँखि ऊजरी होति।"

अर्थात् भाव यह है कि तन-द्युति की उज्ज्वलता के प्रभाव से आँख भी उज्ज्वल हो गई। ऐसा जान पड़ता है, मानो सुंदरी की प्रभा से दर्शक के नेत्रों में नायिका के रूप-रस के प्यासे होने के कारण जो कुथ कल्मष संचित था, वह भी धुल गया। ऐसे स्थलों में यह सौंदर्य कामोदी नहीं करता, लेकिन श्वेत गौरता की एक सात्विक मूर्ति जरूर हमारे सामने प्रस्तुत कर देता है।

डॉ. रामरतन भटनागर के अनुसार "बिहारी तारूण्य का संबंध स्वर्ण से जोड़ते है और गौर-वर्ण कौमार्य से"। लेकिन विविध वर्णों में से कनक-वर्ण पीत बिहारी को सर्वाधिक प्रिय है। कदाचित कनक-वर्ण के ही प्रति उनका अनुराग विशेष था। कनक वर्ण श्वेत वर्ण सान्निध्य में अत्याधिक नयनाभिराम प्रतीत होता है। श्वेत वर्ण की साडी पहने एक पीत-वर्णी युवती का चित्र देखिए -

"सोहति धोति सेत मैं, कनक-बरम-तन-बाल
सारद-बारज-बीजुरी-भा-रद कीजत, लाल।।"

भाव यह है कि श्वेत धोती में सुवर्ण-रंग वाली वह प्रेमि ऐसी शोभती है कि उसके सामने शरदऋतु के बादल की बिजली की प्रभा भी व्यर्थ हो जाती है।

बिहारी ने सौंदर्य वर्णन के समय में रंगों का भी खूब उपयोग किया है जैसे , 'हरित बाँस की बाँसु मिश्र बंधुओं के अनुसार', "बिहारी ने रंगों और उनके मिलाव का बड़ा श्लाघ्य वर्णन किया है।"

सोनजुही सी जगमगति, अंग-अंग जीवन-ज्योति।

सुरंग, कसुंभी कंचुकी दुरंग देह-दुति होति।"

भाव यह है कि कमिनी के अंग-प्रत्संग में नव-प्रस्फुटि यौवन की ज्योति जगमगा रही है, तथा कुसुंभ के रंग में रंगी हुई लाल कंचुकी उसकी स्वर्णिम-द्युति से मिल कर दुरंगी - रक्त-पीत मिश्रित - बन जाती है। उस तरह बिहारी ने इस दोहे में कवि की अपनी अंतरामा की रंगीनी मिला कर माया-माधुरी का जनन किया है।

इस तरह बिहारी ने अपने काव्य के माध्यम से सौंदर्य की विविध छटा को बिखेरा है। उनके काव्य में सौंदर्यानुभूति की व्यापकता, विशदता, सूक्ष्मता एवं मार्मिकता का बहुत ही सहज रूप में प्रस्तुत किया है।

बिहारी का संयोग-वियोग शृंगार निरूपण

बिहारी अनुराग के कवि हैं और उनकी वृत्ति अनुराग के मिलन-पक्ष में खूब रमी है। उन्होंने शृंगार के ऐसे अद्‌भुत और विदग्ध वर्णन किये हैं जिन्हें पढ़कर पाठक को आनंद की अनुभूति होती है।

बिहारी का प्रेम अथवा रति-रंग सौंदर्य सापेक्ष है। अतः बिहारी सौंदर्य की मांसलता से तथा उसके बाह्य रूप-स्वरूप से ही अधिक प्रभावित हैं।

संयोग शृंगार का प्रधान आलंबन नारी है। उसके अंग-प्रत्यंग, उसकी-शारीरिक तथा मानसिक चेष्टाएँ उसे उद्‌दीप्त कर रसोंद्रक के लिए पुष्ट करती है। बिहारी के संयोग वर्णन में अनूठे और विदग्ध-चित्र मिलते हैं। नारी का आँगिक, वाचिक और कायिक सौंदर्य-शृंगार आदि प्रेमतत्व ही प्रधान है।

छपि-छपि देखति कुचनि-तनु कर सौ अंगिया टारि।
नैननि में निरखति रहै, भई अनोखी नारि।।

जब नायिका को प्रेम का आभास होता है, तब वह यह अनुभव करती है कि यह क्या है जो उसके मर्म का स्पर्श करता है। नायक का साथ मिलते ही उसका संकोच दूर होता है।

"हँसि ओठन-बिच करु उचै, किये निचौ है नेन।
खरै अरै प्रिय कैं प्रिया, लगी बिरी मुख दैन।।

प्रेम की यह हिचक धीरे-धीरे और अधिक संकोच मुक्त कर देती है और अब वह स्वयं इस व्यापार में निस्संकोच आनंद लेने लगती है।

"मुखु उधारि पिउ लखि रहत रह्यौ न गौ मिस-खेन
फरके ओठ-उठे पुलक, गए उधरि जुरि नैन।।

बिहारी ने नायिका के प्रौढ़ा, मध्या, धीरा, अधीरा आदि रूपों में संयोग वर्णन किए हैं, जिनमें उसके हाव, भाव, अनुभाव और संचारी भावों के सहज उद्रेक मिलते है। अटारी पर स्थित नायिका की एक संयोग क्रीडा दृष्टव्य है

"छिनकु चलति, ठठुकति छिनकु, भुज प्रीतम-गल डारि।
चढी अटा देखति घटा बिज्जु-छाट सी नारि।।

शृंगार रस के शास्त्रीय रूप को आधार बनाकर यदि संयोग का विश्लेषण किया जाय तो भी बिहारी उसमें पूर्ण सफल कृतिकार उतरते हैं। शृंगार के संयोग पक्ष के मूलभूत शास्त्रीय तत्त्वों में आलंबन उद्‌दीपन, अनुभाव, संचारी-भाव और स्थायी-भाव आ जाते हैं। संयोग शृंगार के मूल में शारीरिक सौंदर्य और आकर्षक चेष्टाओं और प्रेम-जन्य मनोविकारों का उत्कृष्ट वर्णन किया गया है। इसमें नायक-नायिका की संयोग-जन्य दशाओं और भंगिमाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उद्‌दीपन विभाव की समस्त स्थितियों के मूल में प्रेम-क्रीडा, ऋतु वर्णन, मद्‌यपान, और नायक-नायिका की आंगिक चेष्टाएँ आ जाती है। इन प्रेम-जन्य चेष्टाओं को बिहारी ने दर्शन, श्रवण, संभाषण और स्पर्श आदि के माध्यम से स्पष्ट किया है।

"ज ज्यौं उझकि झांपति बदनु झुकति बिहँस सतराई।

तत्यौ गुलाल मुठी ही झझकावत प्यौ जाई।।

संयोग सुख की अवस्था में होने वाले शारीरिक आनंद से उत्पन्न स्वेद, रोमांच, भय, हर्ष, वैवएर्य आदि को सात्विक अनुभावों के अंतर्गत लिया गया।

इन अनुभावों का उद्‌भव गुम, श्रवण, दर्शन तथा प्रिय के स्पर्श के कारण होता है, इन सब की प्रतिक्रिया स्वरूप हुए मनोवेगों और विकारों को ही सात्विक अनुभाव कहा जाता है। इन अनुभावों के संचारशील कार्यव्यापारों में स्पर्श क्रिया सबसे प्रमुख होती है। जैसे,

"मुख उघारि पिउ लखि रहत रह्‌यौ
न गौ मिस-सैन।
पारके ओठ, उठे पुलक, गए उधरि जुरिनैन।।
ऊँचे चितै सराहियतु गिरह कबू तरु लेतु।
इलकित हद, मुलकित बदनु तनु पुलकित किहिं हेतु।।

बिहारी के संभोग वर्णन में कामक्रीडा, सूरत आदि का वर्णन अधिक होने के कारण आलिंगन, परिरम्भण, चुंबन आदि विविध बाध्य व्यापारों का चित्रण बडी सजीवता के साथ मिलता है। ये समस्त बाह्‌य व्यापार एवं इंद्रियों की बाध्य चेष्टाएँ दो भागों में विभक्त की गई है। इसमें से जो सचेष्ट व्यापार है, वे 'भाव' कहलाते है और जो सहज एवं स्वाभाविक चेष्टाएँ होती है, उन्हें 'अनुभाव' कहते हैं। बिहारी में दोनों का ही प्राधान्य जैसे -

"बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंहकरै, भौंहन हँसे, दैन कहै, नटि नाय।।"

इस दोहे में सौंह करना, भौं हों में हँसना, देने के लिए कहना नट जाना आदि सभी बाह्य व्यापार किसी विशेष उद्‌देश्य से चेष्टापूर्वक हुए हैं।

बिहारी ने संभोग-शृंगार के अंतर्गत नायिकाओं के अभिसार का बडा ही मनोरंजक वर्णन किया है। जब कोई नायिका शुक्ल पक्ष की रात्रि में चाँदनी के अंतर्गत अपने प्रिय से मिलने जाती है तब वह शुक्ल अभिसारिका कहलाती है। बिहारी ने ऐसी नायिका का वर्णन करते हुए बताया है कि वह गौर वर्ण की युवती चाँदनी में ऐसी मिल गई है कि अभिसार को जाती हुई वह किसी को भी दिखाई नहीं पड़ती। उसके साथ उसकी सखी केवल उसके शरीर की सुगंध के सहारे चल रही है,

"जुवति जोन्ह मैं मिली गई नैंक न हौति लखाइ।
सौंधे कै डोरैं, लगी अली चली संग जाइ।"

इस तरह बिहारी ने संयोग शृंगार का बहुत ही कामोद्‌दीपक भावोत्तेजक, मनोरंजक एवं वासनात्मक वर्णन किया है। इसमें मर्यादा का भी उल्लंघन हो गया है तथा कुछ वर्णनों में सामाजिकता की सीमा का भी अतिक्रमण हो गया है। लेकिन इन वर्णनों में सौंदर्य चेतना को उद्‌बुद्‌ध करने की अपूर्व क्षमता है तथा हृदय पर प्रभाव डालने की अद्‌भुत शक्ति है। इसीलिए सौंदर्य के सरस चित्र अंकित करने में बिहारी सर्वोत्कृष्ट कवि माने जाते हैं।

वियोग शृंगार निरूपण

साधारणतया वियोग चार प्रकार का होता है - 1. पूर्वराग 2. मान 3. प्रवास 4. करुण। वियोग का तात्पर्य मिलन के अभाव से है। यदि नायक और नायिका एक ही नगर में, एक ही घर में रहते हुए भी मिल न पाये तो भी उसे वियोग ही माना जाता है। इसी कारण पूर्वराग एवं मान को भी वियोग के अंतर्गत सम्मिलित कर लिया गया है। बिहारी ने उक्त सभी भेदों का निरूपण बडी तत्परता एवं तल्लीनता के साथ किया है। पूर्वराग संबंधी वियोग में किसी के गुणों को सुनकर अथवा किसी का रूप-सौंदर्य देखकर हृदय में उसके प्रति सहज अनुराग एवं आकर्षण उत्पन्न हो जाता है, लेकिन किसी

कारणवश वे परस्पर मिलने के लिए विवश रहे जाते हैं। इस दशा का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है।

"हरि-छवि-जल जब तौंपरे, तब तैं छिनु बिछुरैंन।
भरत, दरत, बूढ़त, तरत, रहत घरीलौं नैन।।

इसी तरह बिहारी प्रणय-मान और ईर्ष्या - मान का भी वर्णन किया है।

प्रवास संबंधी विरह का वर्णन तो बहुत ही प्रचुर मात्रा में मिलता है। बिहारी का सर्वाधिक कौशल इसी विरह-वर्णन में दिखाई देता है। इसमें बिहारी ने नायक के विदेश-गमन का समाचार पाते ही नायिका को अत्यंत बेचैन दिखाया है। वह उस क्षण बेचैनी के मन कुछ भी कह नहीं पाती, मानो प्रियतम की डबडबाई हुई दृष्टि ने उसके गले को रुँध दिया है -

ललन-चलनु सुनिचुप रही, बोली आपु न ईठि।
राख्यो गहि गाढे गरे, मनो गलगली डीठि।।"

तो कहीं पर नायिका वियोग में इतनी प्रज्ज्वलित रही है कि वियोगाग्नि में जला हुआ तथा आँखों के मार्ग से आँसुओं के साथ बहा हुआ उसका ह्रदय आठों पहर आह रूपी समीर से डसा करता है जैसे -

"प्रजरयौ आगि वियोग कौ बध्यों विलोचन-नीर।
आठौं जाम हियौ रहै उड्यौ उससा-समीर।।"

बिहारी ने नायक परदेस से लौटकर आने के बाद उस दर्शन के लिए उत्सुक नायिका का बहुत ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। प्रवास जन्य विरह का वर्णन करते हुए बिरहिणी के अत्याधिक संताप का चित्रण करने के लिए अतिशयोक्तियों का भी सहारा लिया है। इसके साथ ही बिहारी ने करूण विप्रलभ्भ का वर्णन अधिक नहीं किया है। फिर भी राधा ऐसी गोपियों के दो एक विरह-चित्रों में करुण विप्रलम्ब की छटा मिल जाती है। "स्याम सुरति कर राधिका, तकतितरनिजा-ती.. अँसुवनि करति तरौंस कौ खिनकु खरौं हौं नीरु।

सारांश यह है कि बिहारी ने विरह के विविध भेदों में सर्वाधिक प्रवास-जन्य विरह का वर्णन किया है और विरह-जन्य काम-दशाओं में से सर्वाधिक व्याधि का निरूपण किया है। ऋतु चित्रण में बिहारी ने षट् ऋतुओं की मार्मिक झांकी प्रस्तुत करते हुए प्रकृति का आलंबन रूप चित्रित किया है। इस तरह बिहारी ने ऋतु-निरूपण के अंतर्गत प्रकृति के मृदु-मंजुल रूप की अत्यंत मनोहर झांकी अंकित की है, जिसमें देशगत, कालगत एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ-साथ गहन अनुभूति एवं सूक्ष्म निरिक्षण विद्यमान है।

बिहारी की नीति एवं भक्ति

डॉ. नगेंद्र के अनुसार, "रीतिकालीन कवियों की भक्ति भी इनकी शृंगारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबड़ा उठते होंगे, तब राधाकृष्ण का यही अनुराग उनके धर्मभीरु मन को आश्वासन देता होगा।" इन कवियों ने समान भाव से रामकृष्ण और नरसिंह का स्मरण किया है। कही निर्गुण की महिमा मुक्तकंठ से गाई है तो प्रतिबिंबवाद और अद्वैतवाद के संबंध में भी कुछ न कुछ कहा है। नाम-स्मरण पर भी अत्यंत बल दिया है। कहीं-कहीं पर अपने आराध्य देव के प्रति अति श्रद्धामयी वचनवक्रता से भी काम लिया है। लेकिन इतना सब कुछ होते हुए भी उन्हें भक्त नहीं कहा जा सकता। वे पहले कवि है, और वह भी अनुराग के विराग के नहीं। वैसे भी राधाकृष्ण के सुमिरन का बहाना' करके ही इन कवियों ने अपने भक्ति-संबंधी उद्गार व्यक्त किए है। इसीलिए इन उद्गारों के आधार पर न तो इन्हें भक्त कवि कहा जा सकता है न नीति संबंधी उक्तियों के आधार पर नीतिज्ञ ही माने जा सकते हैं। बिहारी ने भक्ति और नीति संबंधी जो दोहे लिखे हैं, उनके अंतर्गत कहीं संसार के मिथ्यात्व का प्रतिपादन करते हुए जगत् को कच्चे काँच के समान असत्य कहा है, जिसके प्रत्येक पदार्थ में उसी एक अनन्त रूप की आभा प्रतिबिंबित होती हुई दिखाई दे रही है जैसे -

"मैं समुधयो निरधार, यह जगु काँचो काँच सौ।

एकै रुप अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ।।"

बिहारी ने, "कौन भाँति रहि है विरदु,

अब देखिबी मुरारि।

बीहो मोसों आइ कै गीधे गीधहिं तारि।।"

ऐसा मुरारी को कहा, कि अब आपको ही देखना है कि आपका बिरद अब किस प्रकार रहता है, क्योंकि आप एक सामान्य पापी गृद्ध को तारकर अब मुझ महापापी से अकर उलझे हो। आगे बिहारी करते हैं कि हे दीनदयालु! संसार भले ही मेरी निंदा किया करे, परंतु मैं अपनी कुटिलता नहीं छोड़ूँगा क्योंकि यदि मैं कुटिलता छोड दूँगा तो आप त्रिभंगी होने के कारण मेरे सरल एवं सीधे चित्त में निवास करते हुए दुःखी होंगे, क्योंकि टेढी वस्तु सीधी वस्तु के अंदर समा नहीं सकती जैसे,

"करों कुबत जगु, कुटिलता, तजौं न दीन दयाल।

दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगीलाल।।"

अब इन सब पर नजर डालें तो एक बात बिलकुल साफ दिखाई देती है कि बिहारी की भक्ति कम और उक्ति-वैचित्र्य एवं वाणी का कौशल दिखाई देता है।

बिहारी ने पूर्ववर्ती कवियों की पद्धति जैसे तुलसी, रहीम, कबीर की अनुसरण करके कुछ निजि विषयक दोहे भी कहे हैं, जो बहुत ही उच्च श्रेणी के है जैसे,

"कनक, कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय

वा खाये बौराय जग, या पाये बौराय।"

दुहरे शासन में दुःखी प्रजा को देखकर शासन की निंदा की है, "दुसह दुराज प्रजान कौ, क्यों न बठै दुख दंदु अधिक अंधरौ जग करत मिलि मावस रवि-चंदु।।'

जो लोग माला छापा, तिलक आदि धारण करके ब्राह्याडम्ब में लीन रहते हैं उन्हें अच्छी तरह फटकारा है जैसे -

"जप माला, छपैं, तिलक सरै न एकौ कामु।

मन-काँचे नाचै वृथा, साँचे राचै रामु।।"

समाज में साधु-सज्जन को कोई नहीं पूछता और दुष्टों का सम्मान होता देख बिहारी कहते हैं -

"बसै बुराई जासु तुन, ताही कौ सनमान।

भलौ-भलौ कहि छोड़ियै, खोटे ग्रह जपु दानु।।"

इस तरह बिहारी ने सामाजिक कुरीतियों अथवा व्यवहारों के संबंध में अधिक दोहे लिखे हैं, ये दोहे गहन अनुभूति के भंडार हैं और इनमें लोकए शास्त्र का समन्वित ज्ञान भरा हुआ है।

काव्य सौंदर्य

"बिहारी सतसई" की वजहसे ही बिहारी एक सजग कलाकार के रूप में सामने आए। यह मुक्तक काव्य के रूप में लिखा गया है। मुक्तक कार के पास जीवन का आधार फलक अत्यंत सीमित होता है और उसमें ही उसे सजीव रूप रेखाएँ और रंग भरने पड़ते हैं। जिस मुक्तक काव्य में यह रूप रंग जितना उज्ज्वल होगा वह उतना ही सफल होगा। बिहारी सतसई की समस्त रचना विधान रीतियुक्त न होकर आद्योपान्त रीतिबद्ध है। रीति को आत्मा ग्रंथ में इस तरह अनुस्यूत है कि बिहारी को रीति कवियों में प्रमुख स्थान मिला है।

बिहारी को रसवादी स्वीकार करने वाले विद्वान सतसई के दोहों में रस योजना पर विशेष बल देते हैं और सतसई के अंतिम दोहों में 'करी बिहारी सतसई, भरी अनेक संवाद' शब्द रसास्वादन अर्थ करके यह सिद्ध करना चाहते है कि बिहारी रससास्वादन कराने के निमित्त ही सतसई की रचना में लीन हुए थे।

बिहारी के काव्य की आत्मा, शृंगार है। शृंगार की व्यंजना ध्वनि के माध्यम से हुई है। शृंगार वर्णन के लिए संयोग तथा विप्रलंभ दोनों पक्ष बिहारी ने स्वीकार किए है। वे अनुराग के कवि हैं और उनकी वृत्ति अनुराग के मिलन-पक्ष में खूब रमी है। संयोग-पक्ष की कोई ऐसी स्थिति नहीं जो बिहारी की दृष्टि से बची हो।

"मैं मिसहा सोयौ समुझि मुंह चूम्पो ढिंग जाइ।
हँस्यौं, खिसानी, गल गह्यौ रही गरै लपटाइ।।
दीप उजैरै हू पतिहिं हरतवसनु रति काज।
रही लिपटि छवि की छटनु नैको छुटी न लाज।।

इस मिलन-सुख में बिहारी ने जिन बातों का वर्णन किया है, जो कुछ रसिकों को बेहद पसंद आएगा।

बिहारी ने अपने काव्य में दो छंदों का प्रयोग मिलता है - दोहा तथा सोरठा। ये दोनों 38 मात्रा के छंद है और परस्पर संबंध है। बिहारी के शृंगार विषयक दोहों में धअवन्यात्मकता ही प्रधान है। ध्वनि के भेदों में अविविक्षत वाच्य ध्वनि प्रथम है।

"होमति सुखु, करि कामना तुमहिं मिलन की लाल।
ज्वालामुखी सी जरति लखि लगनि-अगनि की ज्वाला।।

इस दोहे में 'सुख का होमना' अपने वाच्यार्थ में बाधित है। लक्ष्यार्थ हुआ कि नायिका, नायक के विरह में दुःखी रहती है, उसका सुख समाप्त हो गया है : व्यंग्यार्थ हुआ कि नायिका के सुख उसी प्रकार भस्म हो गए हैं, जैसे अग्नि में पड़ने पर आहुति भस्म हो जाती है। यहाँ शब्दगत अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। जैसे -

"तंत्रीनाद कवित-रस, सरस राग, रति-रंग
अनबूड़े बुड़े तरे जे बूड़े सब अंग।।"

इस दोहे में ध्वनि का बहुत सुंदर उदाहरण है। इस दोहे में ध्वनि का बहुत सुंदर उदाहरण है। डूबना और तरना जलाशय में ही संभव है। कवि रस या तंत्रीनाद जैसे अमूर्त तत्व में नहीं। अतः इसका अर्थ बाधित होकर रसास्वादन का बोध करते है। वाच्यार्थ के अत्यंत तिरस्कृत होने वाली ध्वनि बिहारी में अत्याधिक मात्रा में दिखाई देती है -

बेसरि-मोती, धनि तुहीं, को बूझै कुल, जाति
पीबौ करितिय ओठ कौ रसु निरधक दिन र..

इस दोहे में मानवगत गुण, कर्म, स्वभाव का अचेतन वस्तु (बेसरि-मोतीः के संबंध में वर्णन करके अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

ध्वनि का दूसरा प्रमुख भेद है विपक्षित 'परवाच्य ध्वनि'। इसके रस, ध्वनि और अलंकार तीन ... इस ध्वनि भेद का बिहारी ने पूर्ण चमत्कार के साथ प्रयोग किया है। अहात्मक शैली से नायिका की विरहजन्य दशा में यह ध्वनि अपने विविध भेद-प्रभेद सहित सत.. में छाई हुई है। नायिका की कायिक चेष्टाओं से न.. को अर्थ बोध कराने वाला ध्वन्यात्मक दोहा देखिए -

"हरषि न बोली, लखि ललनु, निरखि अमिलु
आंखिनु ही मैं हँसि धरयौ सीस हियै धरि हाथु।।

इस दोहे में नायिका की कायिक अभिव्यक्तियों से गूढ़ा का संकेत है, आँखों में हँस कर व्यक्त किया कि तुम हृदय में आसीन हो, सिर पर हाथ रखने का अभिप्राय कि मुझे तुम्हारी कामना शिरोधार्य है; किंतु उसकी पूर्ति भी है। इन आंगिक चेष्टाओं में ध्वनि मूलक व्यंजना ही बोध कराती है। जब तक ध्वन्यात्मक आशय समझ नहीं आएगा, रस प्रतीति का प्रश्न ही नहीं उठता

असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य या रस ध्वनि की दृष्टि से बिहारी सतसई की सफलता असंदिग्ध है। ध्वनि के जिन प्रौढ़, परिकृत

और प्रांजल उदाहरण बिहारी के काव्य में हिंदी के किसी अन्य कवि में नहीं हैं। यथार्थ में का काव्य मूलतः काव्य ही है।

बिहारी ने शृंगार रस के अलावा अन्य भावों को भी प्रस्तुत किया है। संचारी और सात्विक भावों की भी रचना की है। निर्वेद और शांतरस का वर्णन भी सतसई में मिलता है। बिहारी तत्वज्ञानी या दार्शनिक न होने पर भी तत्वज्ञान की बात करते हैं। उसी तत्व ज्ञान में निर्वेद समाया रहा है,

"भजन कह्यौ, तातैं भज्यौं न एकों बार।
दूरिभजन जातै कह्यौ-सा तै भज्यौ गँवार।।"

वैराग्य भावना का द्योतक, स्त्री-रूप के आकर्षण से दूर हटाने वाला बिहारी का प्रसिद्ध दोहा है -

"या भव-पारावार कौ उलैघि पार को जाइ।
तिय-छिब-छायाग्राहिनी ग्रहै बीच ही आइ।।"

बिहारी की अन्योक्तियों और सूक्तियों में जीवन के अनुभूत सत्यों का बहुत ही सजीव भाषा में वर्णन मिलता है। बिहारी के काव्य में मार्मिकता के कारण ही वह संसार में अद्वितीय स्थान पा सकी है।

शाषा शैली

बिहारी के समय ब्रजभाषा काव्य के क्षेत्र में छाई हुई थी। उस समय भारत के मध्यप्रदेश में कवि प्रायः हिंदी कविता के लिए ब्रजभाषा का ही व्यवहार करते थे। इनकी भाषा चलती हुई ब्रज भाषा का साहित्यिक रूप है। बिहारी की ससुराल मथुरा में थी और युवावस्था तक मथुरा में ही उनका जीवन व्यतीत हुआ था। इसीलिए बिहारी ने कविता के लिए ब्रजभाषा को ही चुना था। बिहारी की ब्रजभाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है, किंतु अन्य भाषाओं के भी शब्द मिल जाते हैं। बिहारी की शब्द-गठन और वाक्य-विन्यास पर्याप्त सुव्यवस्थित हैं। बिहारी ने सबसे पहले शब्दों की एकरूपता और प्रांजलता पर ध्यान दिया और भाषा में परिष्कार का मार्ग प्राप्त हुआ है। बिहारी की भाषा को शुद्ध ब्रजभाषा कह सकते हैं। साहित्यिक ब्रजभाषा का रूप, इनकी भाषा में सबसे पहले परिष्कृत हुआ है। फिर घनानंद और पद्माकर ने उसे और अधिक पिष्कृत किया।

बिहारी की भाषा में बुंदेल खंडी और पूर्वी का प्रभाव है, घनानंद पूर्वी प्रभाव से मुक्त है। बिहारी ने पूर्वी के प्रयोग, कहीं तुक के आग्रह से कहीं प्रयोग बाहुल्य के कारण स्वीकार किए है किंतु बुंदेली के प्रयोग तो सहज रूप में शैशव के अभ्यास के कारण आए है। संगया साथ के लिए 'स्यौ' लखबी, करबी, पायबी आदि अनेक शब्द हैं। संस्कृत के अतिरिक्त अरबी-फार के इजाफा, ताफता, बिलनबी, कुतबनुमा, रोज आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है।

बिहारी ने भाषा को प्रवाहपूर्ण तथा प्रेषणीय बनाने के लिए लोकोक्ति एवं मुहावरों का भी प्रयोग किया है। जैसे -

"मूड़ चढ़ाऐंऊ रहै परयौ पीठि कच-भारु।
रहै गरै परि, राखिबौ तऊ हिथै पार हारू।।"
"खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।
आक-कलीन रली करै अली, अली, जिय जानी।।
कहि पठई जिय भावती पिय आवन की बात।
फूली आंगन में फिरै आंगन आँग समात।।"

प्रायः जो बात बडे-बडे वाक्यों से भी अच्छी तरह नही कही जाती, वह मुहावरे या लोकोक्ति के द्वारा संक्षेप में बड़ी मार्मिकता एवं प्रभावोत्पादकता के साथ कह दी जाती इसीलिए बडे कवि मुहावरों की शक्ति का ज्ञान प्राप्त करके उनका सफल प्रयोग किया करते हैं। कहीं आँगु न आँग समात तो कहीं छवै छिगुनी पहुँच्यौ गिलत' का प्रयोग किया गया है। ऐसे ही उनके दोहों में 'बाढत विरह ज्यो पांचाली कौ चीर' 'सधे पाय न भुवि परत' 'बूड़े बहे हजा..' 'मुझ चढाएँऊ रहै' 'रहै

गरैं परि' 'आँखिनु आंखि लगी रहे 'आंखि लागति नाहि आदि कितने ही सुंदर एवं सजीव मुहावरों तथा सुष्ठु लोकोक्तियों का प्रयोग मिलता है।

बिहारी की भाषा में माधुर्य-गुण का प्राधान्य मिलता है, जिसके परिणाम स्वरूप बिहारी का प्रत्येक दोहा मधुरिमा की साकार मूर्ति बना हुआ है और बिहारी की भाषा में स्मर्णीयता आ गई है। माधुर्य गुण के अनुरूप वृत्तियों का विन्यास, शब्दों का चयन, अनुप्राय का विधान बिहारी की भाषा की विशेषता है। शब्दों की विकृति से भी बिहारी की भाषा की विशेषता है। शब्दों की विकृति से भी बिहारी ने अर्थ की रमणीयता पर आघात नहीं आनेदिय है। शब्द सौंदर्य अपनी सीमाओं में रहता हुआ अर्थ सौंदर्य को दीप्त करे तभी प्रयोग की सफलता समझी जाती है,

"रनित भृंग-घंटावली झरित दान मधुनीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ, कुंजरु कुंज-समीरु।।"

माधुर्य-गुण का प्राधान्य के कारण ही बिहारी का प्रत्येक दोहा मधुरिमा की साकार मूर्ति बना हुआ है। वैसे भी शृंगार रस और माधुर्य गुण का अन्योन्याश्रीत संबंध है। माधुर्य गुण लाने के लिए प्रायः ङ्, ञ, न, म, से युक्त ऱ्हस्व 'र' और 'न' का प्रयोग किया जाता है तथा समास का सर्वथा अभाव रहता है। यदि समास का प्रयोग भी होता है तो अल्प समास वाले कोमल एवं मस्हण पद ही रखे जाते हैं। बिहारी ने माधुर्य लाने के लिए अपनी भाषा में ऐसे ही शब्दों का प्रयोग किया है, जिनमें 'र' या 'न' की बहुलता और जिनमें 'अनुस्वार का अधिक प्रयोग हुआ है। जैसे -

"रस-सिंगार मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु-रंजनु हूँ बिना, खंजनु गांजनु मैन।।"

बिहारी ने भाषा के प्रसाधन के लिए यमक, अनुप्रास बीप्सा, आदि शब्दालंकारों का कविगण प्रयोग करते हैं। शब्दालंकार केवल शब्दों के चमत्कार के लिए ही नहीं अर्थ की रमणीयता के लिए भी होते हैं, यह बिहारी के काव्य से विदित होता है।

"नाथ-लाली चाली निसा चटकाली धुनि कीन।
रति पाली, आली अनत, आए बमशाली न।।"

बिहारी ने शब्दों को तोड़ा-मरोडा अवश्य है, किंतु छंदानुरोध से या ब्रजभाषा की सहज प्रकृति के अनुरोध से ऐसा किया है। स्मर के लिए, समर, ज्यों के लिए जज्यों और त्यों-त्यों के लिए तत्यों, कै कै के स्थान पर 'क कै" आदि प्रयोग मिलते हैं जो उचित नहीं है किंतु सात सौ दोहों में दस-पांच शब्दों के कारण उनके भाषा-प्रयोग पर दोषारोपण नहीं किया जा सकता।

बिहारी की भाषा में ध्वन्यात्मकता पर्याप्त मात्रा में मिलती है। क्योंकि बिहारी ने ऐसे-ऐसे वर्णों का समान रूप से प्रयोग किया है, जिसमें अद्भुत वर्ण मैत्री के कारण उस वस्तु की गति एवं ध्वनि का भी आभास मिल जाता है, जिसका वर्णन किया जा रहा है। जैसे बिहारी ने 'रतिन भृंग घण्टावली' के साथ 'मंद-मंद आवतु चल्यौ कुंजर कुंज समीरु' कहकर वायु के मंद-मंद आवतु चल्यौ कुंजर कुंज समीरु कहकर वायु के मंद मंद गति के साथ आने का जो वर्णन किया है, उसमें वायु की गति के साथ-साथ ध्वनि को भी चित्रित किया है। ऐसे ही बिहारी ने 'छकि रसाल सौरभ सने मधुर माझवी गंध के साथ-साथ 'ठौर-ठौर झौंरत झैवत झौंर झौंर मधु अंध" का जो वर्णन किया है, उसमें भ्रमरों के मँडराने के चित्र के साथ-साथ गुनगुनाने की ध्वनि का भी चित्र विद्यमान है। बिहारी की भाषा में अद्भुत अभिव्यंजना शक्ति भरी हुई। उसकी सामासिकता तो हिंदी क्षेत्र में विख्यात है क्योंकि 'गागर में सागर' भरने का सर्वोत्कृष्ट गुण बिहारी की भाषा में ही मिलता है। बिहारी के दोहे को सुनते ही कोई भी व्यक्ति सहसा उसे याद कर लेता है। उसमें लाक्षणिकता के साथ-साथ व्यंग्य भी कूट-कूटकर भरा हुआ है। बिहारी की भाषा के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि, "बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य-रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर

है। यह बात बहुत कम कवियों में पायी जाती है। ब्रजभाषा के कवियों के शब्दों का बहुत अंग-भंग किया है और कहीं-कहीं गढत शत का व्यवहार किया है। बिहारी की काव्य भाषा इस दोष से बहुत कुछ मुक्डत है।"

बिहारी की अलंकार योजना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "अलंकार वर्णन की भिन्न-भिन्न ढंग से कहने के लिए खास-खास ढंग अतः रीतिकालीन कवियों ने एक ही बात के भिन्न-भिन्न ढंग से कहने के लिए या भिन्न-भिन्न में प्रस्तुत करने के लिए अलंकारों का सर्वाधिक सहारा लिया है। इस क्षेत्र में बिहारी ने सबसे अधिक कौशल दिखाया है, क्योंकि छोटे से दोहे में अलंकारों के सहारे ही अद्‌भुत उक्ति के साथ-साथ अनुपम भावों की व्यंजना की है! बिहारी के प्रायः सभी अलंकार भाव प्रेषणीयता में अन्य सभी कवियों की अपेक्षा अधिक सफल सिद्‌ध हुए हैं। इनमें बहुधा भावानुकूल आलंकारों का ही प्रयोग हुआ है और बिहारी का प्रत्येक दोहा अलंकारों के अनुपम सौंदर्य से ओतप्रोत है।

असंगति अलंकार का सुंदर उदाहरण देखिए -

"दृग उरझत टूटत कुटुंब जुरत चतुर चित प्रीति।
परित गाँठि दुरजन हिये दई नई यह रीति।।

व्यतिरेक अलंकार में नायिका के नेत्रों से हिरनी के नेत्रों की समता की है और हिरनी के नेत्रों से भी बढ़कर नायिका के नेत्र बताये हैं जैसे -

वर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तैं, हरि, नीके ए नैन।।

कहीं नारी की समता नागीन से करके सुंदर पूर्णोपमा अलंकार प्रस्तुत किया है, "चिलक चिकनई, चटकसी लफति सटक लौं आइ।

नारी सलौनी साँवरी, नागिन सी डसि जाइ।।

सोगरूपक अलंकार का प्रयोग, "कहीं ठोढ़ी में गड्ढे का, नयनों में बटो ही का, चिलक में चौंध का, रूप-सौंदर्य में ढंग का और हँसी में फाँसी का आरोप किया है उसका उदा देखिए -

"डारे ठोड़ी-गाड़ गहि, नैन बटोही मारि।
चिलक-चौंध मैं रूप-ठग, हाँसी-फाँसी डारि।।"

उत्प्रेक्षा अलंकार के लिए बिहारी ने नायिका की श्वेत साडी से ढँका उसके कानों में हिलता हुआ तर यौना देखकर उत्प्रेक्षा की है कि मानो प्रभात में सूर्य का प्रतिबिंब गंगाजी में हिलते हुए जल में पड़ा हो,

"लसुत श्वेत सारी : ढप्यौ, तरल तरयौना कान।
परयौ मनौ सुरसरि-सलिल रवि-प्रतिबिंदु विहान।।"

बिहारी ने विरोधाभास अलंकार में तंत्रीनाद, कविन्त-रस सरस राग और रति-रंग में अनबूडों को डूबते हुए और पूर्ण रूप से डूबे हुओं को तर जाते हुए दिखाया है जैसे -

"तंत्री-नाद, कविन्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूढे, बूड़े तरे जे बूडे सब अंग।।"

इस प्रकार बिहारी की अलंकार-योजना में कहीं-कही भले ही चमत्कारप्रियता एवं दूरारूढ़ कल्पना मिलती है, फिर भी उनमें सरसता एवं भावात्मकता ही पर्याप्त मात्रा में विद्‌यमान है। बिहारी ने भाव-चित्रण की अपेक्षा रूप-चित्रण के लिए अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है और इसी में बिहारी को सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है।

अध्याय - 6 घनानंद

घनानंद की प्रेमानुभूति -

घनानंद की प्रेमानुभूति को वही समझ सकता है जिसने विरह की पीड़ा सहन की हो, जो प्रेम की चाह में नख-शिकांत डूबा हो। इस दृष्टि से विचार करने पर एक बात स्पष्ट होती है कि घनानंद के काव्य में प्रेम का उदात्त स्वरूप एवं बहुत ही गहराई की भूमिका प्रस्तुत हुई है। इनकी प्रेमानुभूति प्रेम की लौकिक धारा चहानों से निकलकर अलौकिकता के चौरस धरातल पर प्रवाहित हुई थी। यह कहना जरा भी गलत नहीं होगा कि सुजान के प्रति इनके हृदय में जो प्रेम था उल्हास था और मिलन की जो उत्कट अनुभूति थी उसकी वास्तविक परिणति राधा-कृष्ण के प्रेम में अपने सहज रूप में हुई। घनानंद का इस बात पर पूरा विश्वास था कि प्रेम एक अलौकिक महासागर है, जिसमें राधा और कृष्ण एक रस होकर उसमें ही निमग्न रहते हैं। इसीलिए उनकी प्रेमानुभूति में एक सहजता है और साथ ही हृदय पर चोट करने की एक प्रभाविष्णुता भी।

प्रेम का लौकिक धरातल -

घनानंद के प्रेम का मूलाधार सुजान वेश्या थी। जिसके प्रति घनानंद का तीव्र अनुराग था। और यही अनुराग अलौकिक प्रेम में अभिव्यक्त हुआ। इस अलौकिकता का मूलाधार भले ही लौकिक हो, परंतु लौकिक वासना नहीं है, लौकिक ललक ही है, जिसने घनानंद को महानेही बना दिया था।

वफादारी -

घनानंद एक सच्चे एवं वफादार प्रेमी के रूप में जाने जाते हैं। उनकी प्रेमिका ने भले ही उनके साथ विश्वासघात किया हो, परंतु घनानंद ने उसके प्रति कभी दुहाई नहीं दी। बल्कि वे अपने प्रेम मार्ग पर दृढ़ता के साथ चलते रहे। उनके मन में कभी भी छलकपट नहीं था।

"अति सूधो सनेह कौ मारग है जहां तहा सांचे चलै तजि आपुन पौ झिझकैं कपटी जे निसांक नही।

स्वाभाविकता - घनानंद का प्रेम बहुत ही स्वाभाविक था, उसमें कही भी कृत्रिमता, आडम्बर नहीं था। घनानंद स्वाभाविक प्रेम के पुजारी थे। घनानंद ने अपने युग की रुढ़ियों को तोड़कर कविता लिखी, अपने युग के स्वर में स्वर न मिलाकर प्रेम की सर्वथा स्वतंत्र व्यंजना की।

प्रतीक्षा - वियोग में प्रियतम की प्रतीक्षा करने वाली प्रेमिकाओं की अन्तर्वृत्तियों के चित्रण घनानंद ने बहुत ही सुंदर तरीके से किये हैं। इन चित्रणों में नवीनता है, तीव्रता है, सरसता है, मार्मिकता एवं सहृदयता भी है। यही विशेषता उनको औरों से विशेष बना देती है। इसीलिए घनानंद की प्रेमानुभूति भी एक अपना अलग ही स्थान रखती है।

घनानंद की विराहनुभूति

घनानंद के प्रेम में जहां संयोग का हर्ष उल्लास का भाव मिलता है, वही विरह का अथाह सागर भी दृष्टिगोचर होता है। घनानंद विरह के कवि है, क्योंकि उन्होंने प्रेम के मिलन-पक्ष की अपेक्षा विरह पक्ष का ही अधिक आतुरता, तल्लीनता एवं तीव्रता के साथ निरुपण किया है। सुजान के विरह ने घनानंद को अमर बना दिया। कहते हैं कि विरह ही प्रेम की कसौटी है। जो विरही इस कसौटी पर खरा उतरता है, वही सच्चा प्रेमी कहलाता है। क्योंकि प्रेम का सात्विक रूप विरह ही होता है। विरह ही अग्नि वासना को जलाकर आध्यात्मिक स्थिति का निर्माण करती है। इसीलिए विरह-काव्य सर्वाधिक हृदय-द्रावक होते हैं।

घनानंद का विरह बौद्धिक नहीं है, वह तो उनके मन की सच्ची अनुभूति है। उनके विरह काव्य में अत्यंत गूढ़ता एवं गंभीरता भरी हुई है। इस उपालम्भ में विरह के प्रेम की एकनिष्ठा भरी हुई है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है घनानंद

की विरहानुभूति में सात्विक विरह की व्यंजना हुई है इसलिए संप्रेषणीयता की मात्रा सर्वाधिक है।

घनानंद की भगवत भक्ति

घनानंद का लौकिक प्रेम अलौकिकता को प्राप्त कर चुका था। विरह ने घनानंद को अध्यात्मिक भाव में लीन होना सीखाया। पार्थिव प्रतिमाओं के अनुराग का परित्याग करके अपार्थिव प्रेम में आनंद विभोर घनानंद ने प्रेम को अच्चुत स्थान पर विराजमान करवाया। भक्ति में दिव्य प्रेम की अधिकता होती है। और यह दिव्य श्रद्धा घनानंद के काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलती है।

वास्तव में देखा जाए तो घनानंद का प्रेम लौकिक था। परंतु प्रिय की निष्ठुरता, बेवफाई एवं विश्वासघात ने उस लौकिक प्रेम का अलौकिकता की ओर अन्मुख कर दिया। जिस तरह तुलसीदास जी अपनी पत्नी द्वारा उद्बोधन से अध्यात्मिक शिखर पर विराजमान हुए, उसी तरह घनानंद भी वासनामयी जीवन को त्याग कर दिव्य, पुनीत सात्विक जीवनधारा में बहने लगे। यही कारण है कि घनानंद की व्यक्ति-निष्ठा एवं वैयक्तिक आस्था असीम में विलीन होकर भगवद्भक्ति का रूप धारण कर गई।

घनानंद की भगवद्भक्ति में विरह से प्राप्त वैराग्यता प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत हुई है। उनके काव्य में वात्सल्य सख्य, दास्य, दांपत्य एवं शांत भाव प्रकट हुए हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भगवान के प्रति उत्कट आसक्ति, गहन आस्था तीव्र अनुभूति घनानंद की भक्ति में समाई हुई है। अतः निसंदेह रूप से कहा जा सकता है कि घनानंद की भक्ति अपने परमोच्च स्थान पर विराजमान है।

घनानंद की काव्य की विशेषताएँ घनानंद के काव्य में विविध भावों का निरुपण मिलता है। विविध रसों की अभिव्यंजना में घनानंद ने अपना सारा कौशल दिखाया है। ब्रज के गाँवों, नगरों, वृंदावन का अत्यंत सजीवता के साथ चित्रण किया है। घनानंद ने प्रकृति के आलंबन-रूप की अपेक्षा घनानंद ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण अधिक सरसता एवं मार्मिकता के साथ किया है। अलंकारों के लिए प्रकृति का सुंदर उपयोग काव्य की एक और विशेषता बन पड़ी है।

घनानंद ने मुख्यतः संयोग शृंगार, वियोग शंगार एवं भक्ति का ही निरूपण किया है। शृंगार में वियोग शृंगार का ही मार्मिकता एवं सजीवता के साथ चित्रण मिलता है।

घनानंद के काव्य में भक्ति रस का भी पूर्ण परिपाक हुआ है। लौकिक प्रेम से अलौकिकता की ओर उनका काव्य उन्मुख हुआ है। भक्ति रस, भक्ति भाव अपनी पूर्ण गरिमा के साथ प्रतिष्ठित हुई हैं।

घनानंद ने रूप-सौंदर्य के अत्यंत मनोहारी चित्र अंकित किये हैं। उनके काव्य में अंग-प्रत्यंग को अलग-अलग दिखाने की उतनी प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती जितनी संपूर्ण अंग की अतिशय रमणीयता एवं प्रभाविष्णुता को दिखाने का प्रयास मिलता है।

घनानंद ने ब्रज भाषा में अपनी सरस काव्य-धारा प्रावहित की है। सारांश यह है कि घनानंद की कविता विविध प्रकार के कलात्मक सौंदर्य से ओतप्रोत है, उसमें जितनी अनुभूति है, उतनी ही गहन अभिव्यक्ति भी है। उनके काव्य में सहज भावों का सहज उद्रेक है और उनकी कला में उक्ति-वैचित्र्य के साथ कल्पनारंजित अभिनव सौंदर्य भी विद्यमान है। इस तरह घनानंद का काव्य-संसार अनेक विशेषताओं से भरा हुआ है।

प्रश्नमंजूषा

प्रश्नपत्र 2 - प्राचीन काव्य

पद्मावत : मलिक मुहम्मद जायसी

1. " 'पद्मावत' में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय दृष्टिगत होता है।" - उदागरण सहित विवेचन कीजिए।
2. 'पद्मावत' के आधार पर जायसी के प्रेमभाव का सम्यक् निरूपण कीजिए।
3. "लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना ही जायसी का मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है।" - सप्रमाण सिद्ध कीजिए।
4. 'पद्मावत' में अभिव्यक्त आध्यात्मिक विचारों की मीमांसा कीजिए।
5. जायसी के वियोगवर्णन की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए लिखिए कि परंपरागत वियोगवर्णन से वह किस प्रकार भिन्न है।
6. "रूप-सौंदर्य के चित्रण में जायसी ने सुक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है।" - विवेचन कीजिए।
7. 'पद्मावत' के आधार पर जायसी के रहस्यवाद की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
8. " 'पद्मावत' में प्रकृतिचित्रण विविध रूपों में उपस्थित हुआ है।" - सप्रमाण स्पष्ट कीजिए।
9. नारी चित्रण की दृष्टि से 'पद्मावत' का मूल्यांकन कीजिए।
10. " 'पद्मावत' में लोकतत्व - लोकाचारों का बड़ी ही विशद निरूपण हुआ है।" - विवेचन कीजिए।
11. 'पद्मावत' के आधार पर जायसी की काव्यकला की समीक्षा कीजिए।
12. 'पद्मावत' अन्याक्ति है अथवा समासोक्ति? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।
13. महाकाव्य की दृष्टि से 'पद्मावत' का मूल्यांकन कीजिए।

कबीर वाणी सुधा - कबीर

1. कबीर की रहस्यानुभूति को सोदाहरण स्पष्टि कीजिए।
2. "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था।" - इस कथ के संदर्भ में कबीर की भाषा का विश्लेषण कीजिए।
3. कबीर की दार्शनिक विचारधार को समझाइए।
4. कबीर के प्रेमभाव को स्पष्ट कीजिए।
5. कबीर की विरह-भावना को समझाइए।
6. कबीर की भक्ति-पद्धति का विवेचन कीजिए।
7. कबीर के धार्मिक और सामाजिक सुधारों से संबंधित विचारों की समीक्षा कीजिए।
8. "कबीर प्रधानतः उपदेशक और समाज-सुधारक थे।" - इस मत से आप कहाँ तक सहमत है? सोदाहरण समझाइए।
9. हिंदी साहित्य में कबीर का स्थान निर्धारित कीजिए।
10. कबीर काव्य की प्रासंगिकता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
11. काव्यकला की दृष्टि से कबीर के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।
12. कबीर के निर्गुण राम के स्वरूप को विशद कीजिए।

विनय पत्रका : गोस्वामी तुलसीदास

1. 'विनयपत्रिका' के हेतु को स्पष्ट करते हुए उसके शीर्षक की सार्थकता को प्रमाणित कीजिए।
2. 'विनयपत्रिका' की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3. 'विनयपत्रिका' के आधार पर तुलसीदास की भक्ति पद्धति का निरूपण कीजिए।
4. 'विनयपत्रिका' की रसयोजना और भावात्मकता को सोदाहरण विवेचन कीजिए।
5. विनयपत्रिका के आधार पर तुलसी की काव्यभाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
6. गीति काव्य की दृष्टि से 'विनयपत्रिका' का मूल्यांकन कीजिए।
7. 'विनय पत्रिका' में प्रतिपादित तुलसी के दार्शनिक विचारों की व्याख्या कीजिए।
8. काव्यकला की दृष्टि से 'विनयपत्रिका' की समीक्षा कीजिए।
9. भक्तिकाव्य में 'विनयपत्रिका' का स्थान निर्धारित कीजिए।
10. कबीर और तुलसी के राम स्वरूप को स्पष्ट कीजिए :
    'विनय पत्रिका' के आधार पर तुलसी की काव्यभाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
11. " 'विनयपत्रिका' भक्ति, दर्शन और काव्य के सामंजस्य का श्रेष्ठतम उदाहरण है।" - युक्तियुक्त मीमांसा कीजिए।
12. "तुलसीदास एक उच्चकोटि के समन्वयवादी कवि थे।" 'विनयपत्रिका के आधार पर चर्चा कीजिए।

मीराँबाई की पदावली : मीरा

1. 'मीराँबाई की पदावली' में प्रतिबिंबित प्रेम के स्वरूप का विवेचन कीजिए।
2. 'मीराँबाई की पदावली' के आधार पर मीराँ के संयोग शृंगार का वर्णन कीजिए।
3. "मीराँ के विरहवर्णन में उसके विरह दग्ध हृदय का समग्र चित्र अंकित हुआ है।" - सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. " 'मीराँ की पदावली में' मीराँ की सौंदर्यानुभूति का चित्रण हुआ है।" - विवेचन कीजिए।
5. पदावली के आधार पर मीराँ की भक्तिभावना पर प्रकाश डालिए।
6. 'पदावली' में प्रतिबिंबित मीराँ के समर्पण - भाव को समझाइए।
7. मीराँ के काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि को विशद कीजिए।
8. " 'मीराँ की पदावली' में रहस्यावादी भावनाओं की झलक भी मिलती है।' - सोदाहरण समझाइए।
9. गीतिकाव्य की दृष्टि से 'मीराँ की पदावली' का मूल्यांकन कीजिए।
10. 'मीराँ की पदावली' के काव्यसौष्ठव का विवेचन कीजिए।
11. मीराँबाई एवं घनानंद के काव्य की तुलना कीजिए।

रीतिकाव्यधारा : संपा. तिवारी - त्रिपाठी

बिहारी

1. बिहारी को रीतिसिद्ध कवि क्यों कहा जाता है? उनके काव्य में प्राप्त रीतिकालीन विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
2. बिहारी के सौंदर्य चित्रण पर प्रकाश डालिए।
3. "संयोग शृंगार की विविध एवं सुंदर छटाएँ बिहारी के काव्य की विरोषना है।" - सोदाहरण समझाइए।

4. बिहारी के वियोग वर्णन की समीक्षा कीजिए।
5. "बिहारी के दोहों में नीति और भक्ति की धाराएँ भी प्रवाहित है।" - युक्तिमुक्त उत्तर लिखिए।
6. "बिहारी के काव्य में प्रकृति चित्रण सीमित होने पर भी उत्कृष्ट कोटि का है।" - पुष्टि कीजिए।
7. बिहारी के दोहों के काव्य सौंदर्य का मूल्यांकन कीजिए।
8. बिहारी भी भाषा पर प्रकाश डालिए।
9. बिहारी की अलंकार योजना की समीक्षा कीजिए।

घनानंद

1. घनानंद को रीतिमुक्त कवि क्यों कहा जाता है? उनके काव्य में प्राप्त रीतिभक्त स्वच्छंदतावादी काव्यधारा की विशेषताएँ लिखिए।
2. घनानंद के काव्य में अभिव्यक्त प्रेम के स्वरूप को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. "घनानंद प्रेमी होने के साथ-साथ उच्च कोटि के भक्त भी थे।" - इस कथन के पक्ष-विपक्ष में चर्चा कीजिए।
4. घनानंद के काव्य में विरह की विभिन्न अंतर्दशाओं का प्रभावशाली वर्णन है।
5. "घनानंद के काव्य में अनुभूति जितनी गहरी है, उतनी ही अभिव्यक्ति सराक्त है।" - विवेचन कीजिए।
6. घनानंद के रूप चित्रों की विषेशताओं पर प्रकाश डालिए।
7. घनानंद के काव्यसौष्ठव को निरूपित कीजिए।
8. बिहारी और घनानंद के शृंगार एवं प्रेमनिरूपण का साम्य-वैषम्य स्पष्ट कीजिए।
9. घनानंद के द्वारा किए गए आंगलावण्य, बाह्यरूप एवं आंतरिक सौंदर्य के चित्रण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
10. घनानंद के काव्य के प्रधान वर्ण्य विषयों की चर्चा कीजिए।
11. भाषा सौंदर्य की दृष्टि से घनानंद के काव्य की समीक्षा कीजिए।

टिप्पणियाँ

(अ) जायसी का विरह वर्णन / 'पद्मावत' - एक मसनवी काव्य/ 'पद्मावत' में प्रेम का स्वरूप/.. प्रकृति-चित्रण / .. कथावस्तु/.. सोंदर्यचित्रण/... बारहमासा/... काव्यकला/... रहस्यभावना।

(ब) कबीर का ब्रह्म / ... माया / कबीर के राम / समाजसुधारक कबीर / उपदेशक कबीर / ... भाषा / ... प्रतीकयोजना /... विरहवर्णन / कबीर की प्रेमानुभूति /... गुरुमाहात्म्य / ... साधुविषयक विचार/ ... कला काव्य / कबी की उलट बासियाँ।

(क) विनय पत्रिकाए का हेतु (प्रयोजन) / ... विशेषता /... भक्ति /... शीर्षक /... भाषाशैली ... तुलसी के राम/ ... रामनामका माहात्म्य / ... अलंकारयोजना/... रसयोजना/...उक्ति वैचित्र्य और अर्थगांभीर्य/... वर्ण्यविषय / ... संदेष/... समन्वयसाधना/ दैन्यभावना।

(ड) मीराँ : पदावली के विषय/... इष्ट देव का निर्मुण रूप/... सगुणरूप/..रहस्यवाद/...कलापक्ष/...गोपीभाग/ ...साधना का रूप/... काव्यत्व/...संयोगभृंगार... वियोग शृंगार/... अलंकार विधान/...भाषा/... मीराँ और कबीर/ मीराँ घनानंद।

(इ) बिहारी - ... बिहारी की नायिका / संयोग-शृंगार/...विरहवर्ण/... सोंदर्यचित्रण/...प्रकृति चित्रण/.. बिहारी के भक्ति विषयक दोहे/... नीति विषयक दोहे/... अलंकार योजना/ दोहों की विशेषता/... बिहारी की बहुज्ञता/... कलापक्ष/... भाषा।

(फ) घनानंद - ... रूपचित्रण/... रीतिपरंपरा... / संयोग शृंगार/...वियोग शृंगार/ घनानंद की प्रेमव्यंजना/... भाषा/ ...वर्ण्यविषय/ काव्यशिल्प घनानंक के कृष्ण - घनानंद की भक्ति / ... अलंकार योजना।